नवजीवन

(शिक्षाप्रद नव कहानियां)

लेखक

श्रीयुक्त प्रेमचन्द्

प्रकाशक—

गोपाल पब्लिशिंग हाउस

बांकीपुर (पटना)

प्रथम बार] १९३५ [मूल्य १।)

विषय-सूची

ॐ

नवजीवन

महातीर्थ

(१)

मुन्शी इन्द्रमणिकी आमदनी कम थी और खर्च ज्यादा। अपने बच्चेके लिये दाई रखनेका खर्च न उठा सकते थे। लेकिन एक तो बच्चेकी सेवा-शुश्रूषाकी फिक्र और दूसरे अपने बराबरवालोंसे हेठे बनकर रहनेका अपमान इस खर्चको सहने-पर मजबूर करता था। बच्चा दाईको बहुत चाहता था, हरदम उसके गलेका हार बना रहता था। इसलिए दाई और भी जरूरी मालूम होती थी, पर शायद सबसे बड़ा कारण यह था कि वह मुरौअतके वश दाईको जवाब देनेका साहस नहीं कर सकते थे। बुढ़िया उनके यहां तीन सालसे नौकर थी। उसने उनके एकलौते लड़केका लालन-पालन

किया था। अपना काम बड़ी मुस्तैदी और परिश्रमसे करती थी। उसे निकालनेका कोई बहाना नहीं था और व्यर्थ खुचड़ निकालना इन्द्रमणि जैसे भले आदमीके स्वभावके विरुद्ध था, पर सुखदा इस सम्बन्धमें अपने पतिसे सहमत न थी। उसे सन्देह था कि दाई हमें लूटे लेती है। जब दाई बाजारसे लौटती तो वह दालानमें छिपी रहती कि देखूं आटा कहीं छिपाकर तो नहीं रख देती, लकड़ी तो नहीं छिपा देती। उसकी लाई हुई चीजोंको घण्टों देखती, पूछ-ताछ करती। बार-बार पूछती, इतना ही क्यों? क्या भाव है? क्या इतना मँहगा हो गया? दाई कभी तो इन सन्देहात्मक प्रश्नोंका उत्तर नम्रतापूर्वक देती किन्तु जब कभी बहूजी ज्यादा तेज हो जातीं तो वह भी कड़ी पड़ जाती थी। शपथें खाती। सफाईकी शहादतें पेश करती। वाद-विवादमें घण्टों लग जाते थे। प्रायः नित्य यही दशा रहती थी और प्रति दिन यह नाटक दाईके अश्रुपातके साथ समाप्त होता था। दाईका इतनी सख्तियां झेलकर पड़े रहना सुखदाके सन्देहको और भी पुष्ट करता था। उसे कभी विश्वास नहीं होता था कि यह बुढ़िया केवल बच्चेके प्रेमवश पड़ी हुई है। वह बुढ़ियाको इतनी बालप्रेमशीला नहीं समझती थी।

महातीर्थ

(२)

संयोगसे एक दिन दाईको बाजारसे लौटनेमें जरा देर हो गयी। वहां दो कुञ्जड़िनोंमें देवासुर-संग्राम मचा था। उनका चित्रमय हाव-भाव, उनका आग्नेय तर्क-वितर्क, उनके कटाक्ष और व्यङ्ग सब अनुपम थे। विषके दो नद थे या ज्वालाके दो पर्वत, जो दोनों तरफसे उमड़ कर आपसमें टकरा गये थे! क्या वाक्य-प्रवाह था, कैसी विचित्र विवेचना! उनका शब्दबाहुल्य, उनकी मार्मिक विचार-शीलता, उनके अलंकृत शब्दविन्यास और उनकी उपमाओं-की नवीनतापर ऐसा कौन-सा कवि है जो मुग्ध न हो जाता। उनका धैर्य्य उनकी शान्ति विस्मयजनक थी। दर्शकों की एक खासी भीड़ थी। वह लाजको भी लज्जित करने-वाले इशारे, वह अश्लील शब्द जिनसे मलिनताके भी कान खड़े होते, सहस्रों रसिकजनोंके लिए मनोरञ्जनकी सामग्री बने हुए थे।

दाई भी खड़ी हो गयी कि देखूं क्या मामला है। तमाशा इतना मनोरंजक था कि उसे समयका बिलकुल ध्यान न रहा। यकायक जब नौके घंटेकी आवाज कानोंमें आयी तो चौंक पड़ी और लपकी हुई घरकी ओर चली।

सुखदा भरी बैठी थी। दाईको देखते ही त्योरी बदलकर बोली, क्या बाजारमें खो गयी थी ?

दाई विनयपूर्ण भावसे बोली, एक जान-पहचानकी महरीसे भेंट हो गयी। वह बातें करने लगी।

सुखदा इस जवाबसे और भी चिढ़कर बोली, यहां दफ्तर जानेको देर हो रही है और तुम्हें सैर-सपाटेकी सूझती है।

परन्तु दाईने, इस समय दबनेहीमें कुशल समझी, बच्चेको गोदमें लेने चली, पर सुखदाने झिड़ककर कहा, रहने दो, तुम्हारे बिना वह व्याकुल नहीं हुआ जाता।

दाईने इस आज्ञाको मानना आवश्यक नहीं समझा। बहूजीका क्रोध ठंढा करनेके लिये इससे उपयोगी और कोई उपाय न सूझा। उसने रुद्रमणिको इशारेसे अपने पास बुलाया। वह दोनों हाथ फैलाये लड़खड़ाता हुआ उसकी ओर चला। दाईने उसे गोदमें उठा लिया और दरवाजेकी तरफ चली। लेकिन सुखदा बाजकी तरह झपटी और रुद्रको उसकी गोदीसे छीनकर बोली—तुम्हारी यह धूर्त्तता बहुत दिनोंसे देख रही हूं। यह तमाशे किसी औरको दिखाइये। यहां जी भर गया।

महातीर्थ

दाई रुद्रपर जान देती थी और समझती थी कि सुखदा इस बातको जानती है। उसकी समझमें सुखदा और उसके बीच यह ऐसा मजबूत सम्बन्ध था जिसे साधारण झटके तोड़ न सकते थे। यही कारण था कि सुखदाके कटुवचनोंको सुनकर भी उसे यह विश्वास न होता था कि वह मुझे निकालनेपर प्रस्तुत है। पर सुखदाने यह बातें कुछ ऐसी कठोरतासे कहीं और रुद्रको ऐसी निर्दयतासे छीन लिया कि दाईसे सहा न हो सका। बोली, वहूजी मुझसे कोई बड़ा अपराध तो हुआ नहीं बहुत तो पाव घंटेकी देर हुई होगी। इसपर आप इतना बिगड़ रही हैं तो साफ क्यों नहीं कह देतीं कि दूसरा दरवाजा देखो। नारायणने पैदा किया है तो खानेको भी देगा। मजदूरीका अकाल थोड़े ही है।

सुखदाने कहा, तो यहां तुम्हारी परवाह ही कौन करता है। तुम्हारी जैसी लौंडिनें गली-गली ठोकरें खाती फिरती हैं।

दाईने जवाब दिया, हां नारायण आपको कुशल रखें। लौंडिनें और दाइयां आपको बहुत मिलेंगी। मुझसे जो कुछ अपराध हुआ हो क्षमा कीजियेगा। मै जाती हूं।
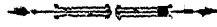
सुखदा—जाकर मरदानेमें अपना हिसाब कर लो।

दाई—मेरी तरफसे रुद्र बाबूको मिठाइयाँ मंगवा दीजियेगा। इतनेमें इन्द्रमणि भी बाहरसे आ गये। पूछा-क्या है क्या?

दाईने कहा, कुछ नहीं। बहूजीने जवाब दे दिया है, घर जाती हूं।

इन्द्रमणि गृहस्थीके जंजालसे इस तरह बचते थे जैसे कोई नंगे पैरवाला मनुष्य कांटोंसे बचे। उन्हें सारे दिन एक ही जगह खड़े रहना मंजूर था, पर कांटोंमें पैर रखनेकी हिम्मत न थी। खिन्न होकर बोले, बात क्या हुई?

सुखदाने कहा, कुछ नहीं। अपनी इच्छा। नहीं जी चाहता नहीं रखते। किसीके हाथों बिक तो नहीं गये।

इन्द्रमणिने झुझलाकर कहा, तुम्हें बैठे-बैठाये एक-न-एक खुचड़ सूझती ही रहती है।

सुखदाने तिनककर कहा, हां, मुझे तो इसका रोग है। क्या करू स्वभाव ही ऐसा है। तुम्हें यह बहुत प्यारी है तो ले जाकर गलेमें बांध लो, मेरे यहां जरूरत नहीं है।

(३)

दाई घरसे निकली तो आंखें डबडबाई हुई थीं। हृदय

रुद्रमणिके लिए तड़प रहा था। जी चाहता था कि एक बार बालकको लेकर प्यार कर लूं। पर यह अभिलाषा लिये ही उसे घरसे बाहर निकलना पड़ा।

रुद्रमणि दाईके पीछे-पीछे दरवाजेतक आया, पर दाईने जब दरवाजा बाहरसे बन्द कर दिया तो वह मचलकर ज़मीन पर लोट गया और अन्ना-अन्ना कहकर रोने लगा। सुखदाने चुमकारा, प्यार किया, गोदमें लेनेकी कोशिश की, मिठाई देनेका लालच दिया, मेला दिखानेका वादा किया, इससे जब काम न चला तो बन्दर, सिपाही, लूलू और हौआकी धमकी दी। पर रुद्रने वह रौद्र भाव धारण किया कि किसी तरह चुप न हुआ। यहांतक कि सुखदाको क्रोध आ गया, बच्चेको वहीं छोड़ दिया और आकर घरके धन्धेमें लग गयी। रोते-रोते रुद्रका मुंह और गाल लाल हो गये, आंखें सूज गयीं। निदान वह वहीं जमीनपर सिसकते सिसकते सो गया।

सुखदाने समझा था कि बच्चा थोड़ी देरमें रो-धोकर चुप हो जायगा। पर रुद्रने जागते ही अन्नाकी रट लगायी। तीन बजे इन्द्रमणि दफ्तरसे आये और बच्चेकी यह दशा देखी तो स्त्रीकी तरफ कुपित नेत्रोंसे देखकर उसे गोदमें

उठा लिया और बहलाने लगे। जब अन्तमें रुद्रको यह विश्वास हो गया कि दाई मिठाई लेने गयी है तो उसे सन्तोष हुआ।

परन्तु शाम होते ही उसने फिर झींखना शुरू किया, अन्ना मिठाई ला।

इस तरह दो-तीन दिन बीत गये। रुद्रको अन्नाकी रट लगाने और रोनेके सिवा और कोई काम न था। वह शान्तप्रकृति कुत्ता जो उसकी गोदसे एक क्षणके लिये भी न उतरता था, वह मौनव्रतधारी बिल्ली जिसे ताखपर देख कर वह खुशीसे फूला न समाता था, वह पंखहीन चिड़िया जिसपर वह जान देता था, सब उसके चित्तसे उतर गये। वह उनकी तरफ आंख उठाकर भी न देखता। अन्ना जैसी जीती जागती, प्यार करनेवाली, गोदमें लेकर घुमानेवाली, थपक-थपककर सुलानेवाली, गा-गाकर खुश करनेवाली चीजका स्थान इन निर्जीव चीजोंसे पूरा न हो सकता था। वह अक्सर सोते-सोते चौंक पड़ता और अन्ना अन्ना पुकारकर हाथोंसे इशारा करता, मानों उसे बुला रहा है। अन्नाकी खाली कोठरीमें घण्टों बैठा रहता। उसे आशा होती कि अन्ना यहां आती होगी। इस कोठरीका दरवाजा

खुलते सुनता तो अन्ना! अन्ना! कहकर दौड़ता। समझता कि अन्ना आ गयी। उसका भरा हुआ शरीर घुल गया, गुलाब जैसा चेहरा सूख गया, मां और बाप उसकी मोहिनी हँसीके लिये तरस कर रह जाते थे। यदि बहुत गुदगुदाने या छेड़नेसे हँसता भी तो ऐसा जान पड़ता था कि दिलसे नहीं हँसता, केवल दिल रखनेके लिए हँस रहा है। उसे अब न दूधसे प्रेम था, न मिश्रीसे, न मेवेसे, न मीठे बिस्कुटसे, न ताजी इमरितीसे। उनमें मजा तब था जब अन्ना उसे अपने हाथोंसे खिलाती थी। अब उनमें मजा नहीं था। दो सालका लहलहाता हुआ सुन्दर पौधा मुर्झा गया। वह बालक जिसे गोदमें उठाते ही नरमी, गरमी और भारीपनका अनुभव होता था, अब सूखकर कांटा हो गया था। सुखदा अपने बच्चेकी यह दशा देखकर भीतर-ही-भीतर कुढ़ती और अपनी मूर्खतापर पछताती। इन्द्रमणि जो शांतिप्रिय आदमी थे अब बालकको गोदसे अलग न करते थे, उसे रोज साथ हवा खिलाने ले जाते थे, नित्य नये खिलौने लाते थे, पर वह मुर्झाया हुआ पौधा किसी तरह भी न पनपता था। दाई उसके लिये संसारका सूर्य थी। उस स्वाभाविक गर्मी और प्रकाशसे

वंचित रहकर हरियालीकी बहार कैसे दिखाता? दाईके बिना उसे अब चारों ओर अन्धेरा और सन्नाटा दिखाई देता था। दूसरी अन्ना तीसरे ही दिन रख ली गयी थी। पर रुद्र उसकी सूरत देखते ही मुंह छिपा लेता था मानों वह कोई डाइन या चुड़ैल है।

प्रत्यक्ष रूपमें दाईको न देखकर रुद्र अब उसकी कल्पनामें मग्न रहता। वहां उसकी अन्ना चलती-फिरती दिखाई देती थी। उसके वही गोद थी, वही स्नेह, वही प्यारी-प्यारी बातें, वही प्यारे गाने, वही मजेदार मिठाइयां, वही सुहाना संसार, वही आनन्दमय जीवन। अकेले बैठकर कल्पित अन्नासे बातें करता, अन्ना कुत्ता भूंके। अन्ना, गाय दूध देती। अन्ना, उजला-उजला घोड़ा दौड़े। सवेरा होते ही लोटा लेकर दाईकी कोठरीमें जाता और कहता, अन्ना, पानी। दूधका गिलास लेकर उसकी कोठरीमें रख आता और कहता, अन्ना दूध पिला। अपनी चारपाईपर तकिया रखकर चादरसे ढांक देता और कहता, अन्ना, सोती है। सुखदा जब खाने बैठती तो कटोरे उठा-उठाकर अन्नाकी कोठरीमें ले जाता और कहता, अन्ना, खाना खायगी। अन्ना अब उसके लिये एक स्वर्गकी वस्तु थी

जिसके लौटनेकी अब उसे बिलकुल आशा न थी। रुद्रके स्वभावमें धीरे-धीरे बालकोंकी चपलता और सजीवताकी जगह एक निराशाजनक धैर्य, एक आनन्दविहीन शिथिलता दिखाई देने लगी, इस तरह तीन हफ्ते गुजर गये बरसातका मौसम था। कभी बेचैन करनेवाली गर्मी, कभी हवाके ठंढे झोंके। बुखार और ज़ोकामका जोर था। रुद्रकी दुर्बलता इस ऋतु-परिवर्तनको बर्दास्त न कर सकी। सुखदा उसे फलालैनका कुर्त्ता पहिनाये रखती थी। उसे पानीके पास नहीं जाने देती। नंगे पैर एक क़दम नहीं चलने देती। पर सर्दी लग ही गयी। रुद्रको खांसी और बुखार आने लगे।

(४)

प्रभातका समय था। रुद्र चारपाईपर आंखें बन्द किये पड़ा था। डाक्टरोंका इलाज निष्फल हुआ। सुखदा चार-पाईपर बैठी उसकी छातीमें तेलकी मालिश कर रही थी और इन्द्रमणि विषाद-मूर्त्ति बने हुए करुणापूर्ण आखोंसे बच्चेको देख रहे थे। इधर सुखदासे वह बहुत कम बोलते थे। उन्हें उससे एक तरहकी घृणा-सी हो गयी थी। वह रुद्रकी इस बीमारीका एकमात्र कारण उसीको समझते

थे। वह उनकी दृष्टिमें बहुत नीच स्वभावकी स्त्री थी। सुखदाने डरते डरते कहा, आज बड़े हकीम साहबको बुला लेते। शायद उनकी दवासे फायदा हो।

इन्द्रमणिने काली घटाओंकी ओर देखकर रुखाईसे जवाब दिया, बड़े हकीम नहीं यदि धन्वन्तरि भी आवें तो भी उसे कोई फायदा न होगा।

सुखदाने कहा, तो क्या अब किसीकी दवा ही न होगी?

इन्द्रमणि—बस, इसकी एक ही दवा है और अलभ्य है।

सुखदा—तुम्हें तो बस वही धुन सवार है। क्या बुढ़िया आकर अमृत पिला देगी?

इन्द्रमणि—वह तुम्हारे लिये चाहे विष हो पर लड़केके लिए अमृत ही होगी।

सुखदा—मै नहीं समझती कि ईश्वरेच्छा उसके अधीन है।

इन्द्रमणि—यदि नहीं समझती हो और अबतक नहीं समझी तो रोओगी। बच्चेसे हाथ धोना पड़ेगा।

सुखदा—चुप भी रहो, क्या अशुभ मुंहसे निकालते हो। यदि ऐसी ही जली-कटी सुनाना है तो बाहर चले जाओ।

इन्द्रमणि तो मैं जाता हूं। पर याद रखो, यह हत्या तुम्हारी ही गर्दनपर होगी। यदि लड़केको तन्दुरुस्त देखना चाहती हो तो उसी दाईके पास जाओ उससे विनती और प्रार्थना करो, क्षमा मांगो। तुम्हारे बच्चेकी जान उसीकी दयाके अधीन है।

सुखदाने कुछ उत्तर नहीं दिया। उसकी आंखोंसे आंसू जारी था।

इन्द्रमणिने पूछा, क्या मर्जी है, जाऊं उसे बुला लाऊं?

सुखदा—तुम क्यों जाओगे, मैं आप चली जाऊंगी।

इन्द्रमणि—नहीं क्षमा करो। मुझे तुम्हारे ऊपर विश्वास नहीं है। न जाने तुम्हारी जबानसे क्या निकल पड़े कि जो वह आती भी हो तो न आवे।

सुखदाने पतिकी ओर फिर तिरस्कारकी दृष्टिसे देखा और बोली, हां, और क्या मुझे अपने बच्चेकी बीमारीका शोक थोड़े ही है। मैंने लाजके मारे तुमसे कहा नहीं पर मेरे हृदयमें यह बात बार-बार उठी है। यदि मुझे दाईके मकानका पता मालूम होता तो मैं भी कभी उसे मना लायी होती। वह मुझसे कितनी ही नाराज हो पर रुद्रसे उसे प्रेम था। मैं आज ही उसके पास जाऊंगी। तुम

विनती करनेको कहते हो मैं उसके पैरों पड़नेके लिये तैयार हूं। उसके पैरोंको आंसुओंसे भिगोऊंगी और जिस तरह राजी होगी राजी करूंगी।

सुखदाने बहुत धैर्य धरकर यह बातें कहीं, परन्तु उमड़े हुए आंसू अब न रुक सके। इन्द्रमणिने स्त्रीकी ओर सहानुभूति-पूर्वक देखा और लज्जित हो बोले, मैं तुम्हारा जाना उचित नहीं समझता। मैं खुद ही जाता हूं।

(५)

कैलासी संसारमें अकेली थी। किसी समय उसका परिवार गुलाबकी तरह फूला हुआ था। परन्तु धीरे-धीरे उसकी सब पत्तियां गिर गयीं। उसकी सब हरियाली नष्ट-भ्रष्ट हो गयी और अब वही एक सूखी हुई टहनी उस हरे भरे पेड़का चिह्न रह गयी थी।

परन्तु रुद्रको पाकर इस सूखी हुई टहनीमें जान पड़ गयी थी। इसमें हरी भरी पत्तियां निकल आयी थीं। वह जीवन जो अबतक नीरस और शुष्क था अब सरस और सजीव हो गया था। अन्धेरे जङ्गलमें भटके हुए पथिकको प्रकाशकी झलक आने लगी थी। अब उसका जीवन निरर्थक नहीं बल्कि सार्थक हो गया था।

महातीर्थ

कैलासी रुद्रकी भोली भाली बातोंपर निछावर हो गयी पर वह अपना स्नेह सुखदासे छिपाती थी। इसलिये कि मांके हृदयमें द्वेष न हो। वह रुद्रके लिए मांसे छिपकर मिठाइयां लाती और उसे खिलाकर प्रसन्न होती। वह दिनमें दो तीन बार उसे उबटन मलती कि बच्चा खूब पुष्ट हो। वह दूसरोंके सामने उसे कोई चीज नहीं खिलाती कि उसे नजर लग जायगी। सदा वह दूसरोंसे बच्चेके अल्पा-हारका रोना रोया करती। उसे बुरी नजरसे बचानेके लिए तावीज और गंडे लाती रहती। यह उसका विशुद्ध प्रेम था। उसमें स्वार्थकी गन्ध भी न थी।

इस घरसे निकलकर आज कैलासीकी वह दशा थी जो थियेटरमें यकायक बिजली लैम्पोंके बुझ जानेसे दर्शकों-की होती है। उसके सामने वही सूरत नाच रही थी। कानोंमें वही प्यारी-प्यारी बातें गूंज रही थीं। उसे अपना घर काटे खाता था। उस कालकोठरीमें दम घुटा जाता था।

रात ज्यों-त्यों कर कटी। सुबहको वह घरमें झाड़ू लगा रही थी। यकायक बाहर ताजे हलुवेकी आवाज सुन-कर बड़ी फुर्तीसे घरसे बाहर निकल आयी। तबतक याद

नवजीवन

आ गया आज हलुवा कौन खायगा? आज गोदमें बैठकर कौन चहकेगा? वह माधुरी गान सुननेके लिये जो हलुवा खाते समय रुद्रकी आंखोंसे होठोंसे, और शरीरके एक-एक अंगसे बरसता था कैलासीका हृदय तड़प गया। वह व्याकुल होकर घरसे बाहर निकली कि चलूं रुद्रको देख आऊं। पर आधे रास्तेसे ही लौट गयी।

रुद्र कैलासीके ध्यानसे एक क्षण भरके लिए भी नहीं उतरता था। वह सोते सोते चौंक पड़ती, जान पड़ता रुद्र डंडेका घोड़ा दबाये चला आता है। पड़ोसिनोंके पास जाती तो रुद्र हीकी चर्चा करती। रुद्र उसके दिल और जानमें बसा हुआ था। सुखदाके कठोरतापूर्ण कुव्यवहारका उसके हृदयमें ध्यान नहीं था। वह रोज इरादा करती थी कि आज रुद्रको देखने चलूंगी। उसके लिये बाजारसे मिठाइयां और खिलौने लाती। घरसे चलती पर रास्तेसे लौट आती। कभी दो चार कदमसे आगे नहीं बढ़ा जाता। कौन मुंह लेकर जाऊं? जो प्रेमको धूर्त्तता समझता हो, उसे कौनसा मुँह दिखाऊं? कभी सोचती यदि रुद्र हमें न पहचाने तो? बच्चोंके प्रेमका ठिकाना ही क्या? नयी दाईसे हिलमिल गया होगा। यह खयाल उसके पैरोंपर जंजीरका काम कर जाता था।

इस तरह दो हफ्ते बीत गये। कैलासीका जी उचाट रहता, जैसे उसे कोई लम्बी यात्रा करनी हो। घरकी चीजें जहांकी तहां पड़ी रहतीं, न खानेकी सुधि थी न कपड़ेकी। रात-दिन रुद्रहीके ध्यानमें डूबी रहती थी। संयोगसे इन्हीं दिनों बद्रीनाथकी यात्राका समय आ गया। महल्लेके कुछ लोग यात्राकी तैयारियां करने लगे। कैलासीकी दशा इस समय उस पालतू चिड़ियाकी-सी थी जो पिंजड़ेसे निकलकर फिर किसी कोनेकी खोजमें हो। उसे विस्मृतिका यह अच्छा अवसर मिल गया। यात्राके लिये तैयार हो गयी।

(६)

आसमानपर काली घटायें छाई हुई और हल्की-हल्की फुहारें पड़ रही थीं। देहली स्टेशनपर यात्रियोंकी भीड़ थी। कुछ गाड़ियोंपर बैठे थे, कुछ अपने घरवालोंसे विदा हो रहे थे। चारों तरफ एक हलचल-सी मची थी। संसार-माया आज भी उन्हें जकड़े हुए थी। कोई स्त्रीको सावधान कर रहा था कि धान कट जावे तो तालाबवाले खेतमें मटर बो देना और बागके पास गेहूं। कोई अपने जवान लड़केको समझा रहा था कि असामियोंपर

बकाया लगानकी नालिश करनेमें देर न करना और दो रुपये सैकड़ा सूद जरूर काट लेना। एक बूढ़े व्यापारी महाशय अपने मुनीमसे कह रहे थे कि माल आनेमें देर हो तो खुद चले जाइयेगा और चलतू माल लीजियेगा, नहीं तो रुपया फँस जायगा। पर कोई कोई ऐसे श्रद्धालु मनुष्य भी थे जो धर्ममग्न दिखाई देते थे। वे या तो चुपचाप आसमानकी ओर निहार रहे थे या माला फेरनेमें तल्लीन थे। कैलासी भी एक गाड़ीमें बैठी सोच रही थी, इन भले आदमियोंको अब भी संसारकी चिन्ता नहीं छोड़ती। वही बनिज व्यापार लेन-देनकी चर्चा। रुद्र इस समय यहां होता तो बहुत रोता, मेरी गोदसे कभी न उतरता। लौटकर उसे अवश्य देखने जाऊंगी। या ईश्वर! किसी तरह गाड़ी चले। गर्मीके मारे जी व्याकुल हो रहा है। इतनी घटा उमड़ी हुई है, किन्तु बरसनेका नाम नहीं लेती। मालूम नहीं यह रेलवाले क्यों देर कर रहे हैं। झूठमूठ इधर-उधर दौड़ते-फिरते हैं। यह नहीं कि झटपट गाड़ी खोल दें। यात्रियोंकी जानमें जान आए। यकायक उसने इन्द्रमणिको बाइसिकिल लिये प्लेटफार्मपर आते देखा। उनका चेहरा उतरा हुआ था और कपड़े पसीनोंसे तर थे।

वह गाड़ियोंमें झांकने लगे। कैलासी केवल यह जतानेके लिए कि मैं भी यात्रा करने जा रही हूं, गाड़ीसे बाहर निकल आयी। इन्द्रमणि उसे देखते ही लपककर करीब आ गये और बोले, क्यों कैलासी, तुम भी यात्राको चली?

कैलासीने सगर्व दीनतासे उत्तर दिया, हां यहां क्या करू, जिन्दगीका कोई ठिकाना नहीं, मालूम नहीं कब आंखे बन्द हो जायें। परमात्माके यहां मुंह दिखानेका भी तो कोई उपाय होना चाहिये। रुद्र बाबू अच्छी तरह हैं न?

इन्द्रमणि—अब तो जाही रही हो। रुद्रका हाल पूछकर क्या करोगी? उसे आशीर्वाद देती रहना।

कैलांसीकी छाती धड़कने लगी। घबराकर बोली, उनका जी अच्छा नहीं है क्या?

इन्द्रमणि—वह तो उसी दिनसे बीमार है जिस दिन तुम वहांसे निकली। दो हफ्तेतक तो उसने अन्ना-अन्नाकी रट लगाई। अब एक हफ्तेसे खांसी और बुखारमें पड़ा है सारी दवाइयां करके हार गया, कुछ फायदा नहीं हुआ। मैंने सोचा था कि चलकर तुम्हारी अनुनय-विनय करके लिवा आऊंगा। क्या जाने तुम्हें देखकर उसकी तबीयत संभल जाय। पर तुम्हारे घरपर आया तो मालूम हुआ कि

तुम यात्रा करने जा रही हो। अब किस मुंहसे चलनेको कहूं। तुम्हारे साथ सलूक ही कौनसा अच्छा किया था जो इतना साहस करूं। फिर पुण्य-कार्य्यमें विघ्न डालनेका भी डर है। जाओ उसका ईश्वर मालिक है। आयु शेष है तो बच ही जायगा अन्यथा ईश्वरी गतिमें किसीका क्या वश।

कैलासीकी आंखोंके सामने अन्धेरा छा गया। सामनेकी चीजें तैरती हुई मालूम होने लगीं। हृदय भावी अशुभकी आशङ्कासे दहल गया। हृदयसे निकल पड़ा, या ईश्वर! मेरे रुद्रका बाल बांका न हो! प्रेमसे गला भर आया। विचार किया कि मैं कैसी कठोरहृदया हूं। प्यारा बच्चा रो-रोकर हलकान हो गया और मैं उसे देखनेतक नहीं आयी। सुखदाका स्वभाव अच्छा नहीं, न सही, किन्तु रुद्रने मेरा क्या बिगाड़ा था कि मैंने मांका बदला बेटेसे लिया। ईश्वर मेरा अपराध क्षमा करो! प्यारा रुद्र मेरे लिए हुड़क रहा है। (इस खयालसे कैलासीका कलेजा मसोस उठा था और आंखोंमें आंसू बह निकले) मुझे क्या मालूम था कि उसे मुझसे इतना प्रेम है। नहीं मालूम बच्चेकी क्या दशा है। भयातुर हो बोली, दूध तो पीते हैं न?

इन्द्रमणि—तुम दूध पीनेको कहती हो, उसने दो दिनसे आंखेंतक न खोलीं।

कैलासी—या मेरे परमात्मा! अरे कुली! कुली! बेटा, आकर मेरा समान गाड़ीसे उतार दे। अब मुझे तीरथ जाना नहीं सूझता। हां बेटा, जल्दी कर, बाबूजी देखो कोई एक्का हो तो ठीक कर लो।

एक्का रवाना हुआ। सामने सड़कपर बग्घियां खड़ी थीं। घोड़ा धीरे-धीरे चल रहा था। कैलासी बार-बार झुंझलाती थी और एक्कावानसे कहती थी, बेटा! जल्दी कर। मैं तुझे कुछ ज्यादे दे दूंगी। रास्तेमें मुसाफिरोंकी भीड़ देखकर उसे क्रोध आता था। उसका जी चाहता था कि घोड़ेके पर लग जाते। लेकिन इन्द्रमणिका मकान करीब आ गया तो कैलासीका हृदय उछलने लगा। बार-बार हृदयसे रुद्रके लिये शुभ आशीर्वाद निकलने लगा। ईश्वर करें, सब कुशल मङ्गल हो। एक्का इन्द्रमणिकी गलीकी ओर मुड़ा। अकस्मात् कैलासीके कानमें रोनेकी ध्वनि पड़ी। कलेजा मुंहको आ गया। सिरमें चक्कर आ गया। मालूम हुआ नदीमें डूबी जाती हूं। जी चाहा कि एक्केपरसे कूद पड़ूं। पर थोड़ी ही देरमें मालूम हुआ कि कोई स्त्री

मैकेसे विदा हो रही है। सन्तोष हुआ। अन्तमें इन्द्रमणिका मकान आ पहुंचा। कैलासीने डरते-डरते दरवाजेकी तरफ ताका। जैसे कोई घरसे भागा हुआ अनाथ लड़का शामको भूखा प्यासा घर आए और दरवाजेकी ओर सटकी हुई आंखोंसे देखे कि कोई बैठा तो नहीं है। दरवाजेपर सन्नाटा छाया हुआ था। महाराज बैठा सुरती मल रहा था। कैलासीको जरा ढाढ़स हुआ। घरमें पैठी तो नई दाई पुलटिस पका रही है। हृदयमें बलका संचार हुआ। सुखदाके कमरेमें गयी तो उसका हृदय गर्मीके मध्याह्नकालसदृश कांप रहा था। सुखदा रुद्रको गोदमें लिये दरवाजेकी ओर एक टक ताक रही थी। शोक और करुणाकी मूर्त्ति बनी थी।

कैलासीने सुखदासे कुछ नहीं पूछा। रुद्रको उसकी गोदसे ले लिया और उसकी तरफ सजल नयनोंसे देखकर कहा, बेटा रुद्र, आंखें खोलो।

रुद्रने आंखें खोलीं। क्षणभर दाईको चुपचाप देखता रहा। तब यकायक दाईके गलेसे लिपटकर बोला, अन्ना आई! अन्ना आई!!

रुद्रका पीला मुर्झाया हुआ चेहरा खिल उठा, जैसे

बुझते हुए दीपकमें तेल पड़ जाय। ऐसा मालूम हुआ मानों वह कुछ बढ़ गया है।

एक हफ्ता बीत गया। प्रातः कालका समय था। रुद्र आँगनमें खेल रहा था। इन्द्रमणिने बाहरसे आकर उसे गोद्-में उठा लिया और प्यारसे बोले; तुम्हारी अन्नाको मारकर भगा दें?

रुद्रने मुंह बनाकर कहा, नहीं; रोयेगी।

कैलासी बोली, क्यों बेटा, तुमने तो मुझे बद्रीनाथ नहीं जाने दिया। मेरी यात्राका पुण्य-फल कौन देगा?

इन्द्रमणिने मुस्कुराकर कहा, तुम्हें उनसे कहीं अधिक पुण्य हो गया। यह तीर्थ—

महातीर्थ

है।

सुहागकी साड़ी
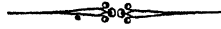
ह कहना भूल है कि दाम्पत्य-सुखके लिये स्त्री-पुरुषके स्वभावमें मेल होना आवश्यक है। श्रीमती गौरा और श्रीमान् कुँवर रतनसिंहमें कोई बात न मिलती थी—गौरा उदार थी, रतनसिंह कौड़ी-कौड़ीको दांतोंसे पकड़ते थे, वह हंसमुख थी, रतनसिंह चिन्ताशील थे, वह कुल-मर्यादापर जान देती थी, रतनसिंह इसे आडम्बरमात्र समझते थे। उनके सामाजिक व्यवहार और विचारमें भी घोर अन्तर था। यहां उदारताकी बाजी रतनसिंहके हाथ थी। गौराको सहभोजसे आपत्ति थी, विधवा-विवाहसे घृणा और अछूतोंके प्रश्नसे विरोध। रतनसिंह इन सभी व्यवस्थाओंके अनुमोदक थे। राजनीतिक विषयोंमें यह विभिन्नता और भी जटिल थी। गौरा वर्त्तमान स्थितिको अटल, अमर, अपरिहार्य्य समझती थी, इसलिये वह नरम-गरम, कांग्रेस, स्वराज्य, होमरूल सभीसे विरक्त थी।

कहती—"ये मुट्ठीभर पढ़े-लिखे आदमी क्या बना लेंगे, चने कहीं भाड़ फोड़ सकते हैं?" रतनसिंह पक्के आशावादी थे, राजनीति-सभाकी पहली पंक्तिमें बैठनेवाले, कर्मक्षेत्रमें सबसे पहले कदम उठानेवाले, स्वदेशव्रत-धारी और बहिष्कारके पूरे अनुयायी। इतनी विषमताओंपर भी उनका दाम्पत्य-जीवन सुखमय था। कभी-कभी उनमें मतभेद अवश्य हो जाता था पर वे समीरके वे झोंके थे जो स्थिर जलको हलकी-हलकी लहरोंसे आभूषित कर देते हैं; वे प्रचण्ड झोंके नहीं जिनसे सागर विप्लव-क्षेत्र बन जाता है। थोड़ीसी सहृदयता, थोड़ासा लिहाज, थोड़ीसी सहानुभूति, थोड़ीसी सदिच्छा सारी विषमताओं, असमताओं और मतभेदोंका प्रतिकार कर देती थी।

(२)

विदेशी कपड़ोंकी होलियां जलायी जा रही थीं। स्वयंसेवकोंके जत्थे भिखारियोंकी भांति द्वारोंपर खड़े हो-होकर विलायती कपड़ोंकी भिक्षा मांगते थे और ऐसा किञ्चित् ही कोई द्वार थां जहां उन्हें निराश होना पड़ता हो। खद्दर और गाढ़ेके दिन फिर गये थे। नयनसुख नयनदुख, मलमल

मनमल और तनजेब तनवेब हो गये थे। रतनसिंहने आकर गौरासे कहा—लाओ अब सब विदेशी कपड़े सन्दूकसे निकाल दो, दे दूं।

गौरा—अरे तो इसी घड़ी कोई साइत निकली जाती है, फिर कभी दे देना।

रतन—वाह, लोग द्वारपर खड़े कोलाहल मचा रहे हैं और तुम कहती हो फिर कभी दे देना।

गौरा—तो यह कुञ्जी लो, निकालकर दे दो। मगर यह सब है लड़कोंका खेल। घर फूँकनेसे स्वराज्य न कभी मिला है और न मिलेगा।

रतन—मैं कल ही तो इस विषयपर तुमसे घण्टों सिर-पच्ची की थी और उस समय तुम मुझसे सहमत भी हो गयी थी, आज तुम फिर वही शंकायें करने लगी?

गौरा—मैं तुम्हारे अप्रसन्न हो जानेके डरसे चुप हो गयी थी।

रतन—अच्छा, शंकायें फिर कर लेना, इस समय जो करना है वह करो।

गौरा—लेकिन मेरे कपड़े तो न लोगे न?

रतन—सब देने पड़ेंगे, विलायतका एक सूत भी घरमें रखना मेरे व्रतको भंग कर देगा।

सुहागकी साड़ी

इतनेमें रामटहल साईसने बाहरसे पुकारा—सरकार, लोग जल्दी मचा रहे हैं, कहते हैं अभी कई मुहल्लोंका चक्कर लगाना है। कोई गाढ़ेका टुकड़ा हो तो मुझे भी मिल जाय, मैंने भी अपने कपड़े दे दिये।

केसर महरी कपड़ोंकी एक गठरी लेकर बाहर जाती हुई दिखायी दी। रतनसिंहने पूछा—"क्या तुम भी अपने कपड़े देने जाती हो?"

केसरने लजाते हुए कहा—हां सरकार, जब देश छोड़ रहा है तो मैं कैसे पहनूं?

रतनने गौराकी ओर आदेशपूर्ण नेत्रोंसे देखा। अब वह विलम्ब न कर सकी। लज्जासे सिर झुकाये सन्दूक खोल-कर कपड़े निकालने लगी। एक सन्दूक खाली हो गया तो उसने दूसरा सन्दूक खोला। सबसे ऊपर एक सुन्दर रेशमी सूट रखा हुआ था जो कुंअर साहबने किसी अङ्गरेजी कारखानेमें सिलाया था। गौराने पूछा—क्या यह सूट भी निकाल दूं?

रतन—हां, हां, उसे किस दिनके लिये रखोगी?

गौरा—यदि मैं यह जानती कि इतनी जल्द हवा बदलेगी तो कभी यह सूट न बनवाने देती। सारे रुपये खून हो गये।

रतनने कुछ उत्तर न दिया। तब गौराने अपना सन्दूक खोला और जलनके मारे स्वदेशी-विदेशी सभी कपड़े निकाल-निकाल कर फेंकने लगी। वह आवेश-प्रवाहमें आ गयी। उनमें कितनी ही बहुमूल्य फेंसी जाकेट और सांड़ियां थीं जिन्हें किसी समय पहनकर वह फूली न समाती थी। बाज-बाज साड़ियोंके लिये तो उसे रतनसिंह-से बार-बार तकाजे करने पड़े थे। पर इस समय सब-की-सब आंखोंमें खटक रही थीं। रतनसिंह उसके भावोंको ताड़ रहे थे। स्वदेशी कपड़ोंका निकाला जाना उन्हें अखर रहा था पर इस समय चुप रहने हीमें कुशल समझते थे। तिसपर भी दो-एक बार वाद-विवादकी नौबत आ ही गयी। एक बनारसी साड़ीके लिये तो वह झगड़ बैठे, उसे गौराके हाथोंसे छीन लेना चाहा, पर गौराने एक न मानी, निकाल ही फेंका। सहसा सन्दूकमेंसे एक केसरिये रंगकी तनजेबकी साड़ी निकल आयी जिसपर पक्के आंचल और पल्ले टंके हुए थे। गौराने उसे जल्दीसे लेकर अपनी गोदमें छिपा लिया।

रतनने पूछा—यह कैसी साड़ी है?

गौरा—कुछ नहीं, तनजेबकी साड़ी है। अञ्चल पक्का है।

रतन—तनजेबकी है तब तो जरूर ही विलायती होगी। उसे अलग क्यों रख लिया ? क्या वह बनारसी साड़ियोंसे अच्छी है ?

गौरा—अच्छी तो नहीं है पर मैं इसे न दूंगी।

रतन—वाह, इस विलायती चीजको मैं न रखने दूंगा। लाओ इधर।

गौरा—नहीं, मेरी खातिरसे इसे रहने दो।

रतन—तुमने मेरी खातिरसे एक चीज भी नहीं रखी, मैं क्यों तुम्हारी खातिर करूं ?

गौरा—पैरों पड़ती हूं, जिद न करो।

रतन—स्वदेशी साड़ियोंमेंसे जो चाहो रख लो, लेकिन इस विलायती चीजको मैं न रखने दूंगा। इसी कपड़ेकी बदौलत हम गुलाम बने, यह गुलामीका दाग मैं अब नहीं रख सकता। लाओ इधर।

गौरा—मैं इसे न दूंगी। एक बार न दूंगी, हजार बार न दूंगी।

रतन—मैं इसे लेकर छोड़ूंगा, इस गुलामीके पट्टेको, इस दासत्वके बन्धनको किसी तरह न रखूंगा।

गौरा—नाहक जिद करते हो।

रतन—आखिर तुमको इससे क्यों इतना प्रेम है ?

गौरा—तुम तो बालकी खाल निकालने लगते हो। इतने कपड़े थोड़े हैं ? एक साड़ी रख ही ली तो क्या ?

रतन—तुमने अभीतक इन होलियोंका आशय ही नहीं समझा।

गौरा—खूब समझती हूं। सब ढोंग है। चार दिनमें जोश ठण्ढा पड़ जायगा।

रतन—तुम केवल इतना बतला दो कि यह साड़ी तुम्हें क्यों इतनी प्यारी है, तो शायद मैं मान जाऊं।

गौरा—यह मेरी सुहागकी साड़ी है।

रतन—(जरा देर सोचकर) तब तो मैं इसे कभी न रखूंगा। मैं विदेशी वस्त्रको यह शुभस्थान नहीं दे सकता। उस पवित्र संस्कारका यह अपवित्र स्मृति-चिह्न घरमें नहीं रख सकता। मैं इसे सबसे पहले होलीकी भेंट करूंगा। लोग कितने हतबुद्धि हो गये थे कि ऐसे शुभ कार्य्योंमें भी विदेशी वस्तुओंका व्यवहार करनेमें सङ्कोच न करते थे। मैं इसे अवश्य होलीमें दूंगा।

गौरा—कैसा अशगुन मुंहसे निकालते हो।

रतन—ऐसी सुहागकी साड़ीका घरमें रखना ही अशकुन, अमङ्गल, अनिष्ट और अनर्थ है।

गौरा—यों चाहे जबरदस्ती छीन ले जाओ पर खुशीसे न दूंगी।

रतन—तो फिर मैं जबर्दस्ती ही करूंगा। मजबूरी है।

यह कहकर वह लपके कि गौराके हाथोंसे साड़ी छीन लूं।

गौराने उसे मजबूतीसे पकड़ लिया और रतनकी ओर कातर नेत्रोंसे देखकर कहा—तुम्हें मेरे सरकी कसम।

केसर महरी बोली—बहूजीकी इच्छा है तो रहने दीजिये।

रतनसिंहके बढ़े हुए हाथ रुक गये, मुख मलिन हो गया। उदास होकर बोले—मुझे अपना व्रत तोड़ना पड़ेगा। प्रतिज्ञा-पत्रपर झूठे हस्ताक्षर करने पड़ेंगे। खैर, यही सही।

(३)

शाम हो गयी थी। द्वारपर स्वयंसेवकगण शोर मचा रहे थे, कुंअर साहब जल्द आइये, श्रीमतीजीसे भी कह दीजिये हमारी प्रार्थना स्वीकार करें। बहुत देर हो रही है। उधर रतनसिंह असमंजसमें पड़े हुए थे कि प्रतिज्ञा-पत्रपर

कैसे हस्ताक्षर करूं। विदेशी वस्त्र घरमें रखकर स्वदेशी व्रतका पालन क्योंकर होगा? आगे कदम बढ़ा चुका हूं, पीछे नहीं हटा सकता। लेकिन प्रतिज्ञाका अक्षरशः पालन करना अभीष्ट भी तो नहीं, केवल उसके आशयपर लक्ष्य रहना चाहिये। इस विचारसे मुझे प्रतिज्ञापर हस्ताक्षर करनेका पूरा अधिकार है। त्रिया-हठके सामने किसीकी नहीं चलती। यों चाहूं तो एक तानेमें काम निकल सकता है पर उसे बहुत दुःख होगा, बड़ी भावुक है, उसके भावों-का आदर करना मेरा कर्त्तव्य है।

गौरा भी चिन्तामें डूबी हुई थी। सुहागकी साड़ी सुहागका चिह्न है, उसे आग............कितने अशकुनकी बात है। ये कभी-कभी बालकोंकी भांति जिद करने लगते हैं, अपनी धुनमें किसीकी सुनते ही नहीं। बिगड़ते हैं तो महीनों मुंह ही नहीं सीधा होता।

लेकिन वे बेचारे भी तो अपने सिद्धान्तोंसे मजबूर हैं। झूठसे उन्हें घृणा है। प्रतिज्ञापर झूठी स्वीकृति लिखनी पड़ेगी, उनकी आत्माको बड़ा दुःख होगा, घोर धर्म-सङ्कट-में पड़े होंगे, यह भी तो नहीं हो सकता कि सारे शहरमें स्वदेशानुरागियोंके शिरमौर बनकर उस प्रतिज्ञापर हस्ताक्षर

करनेमें आनाकानी करें। कहीं मुंह दिखानेको जगह न रहेगी, लोग समझेंगे बसा हुआ है। पर शकुनकी चीज कैसे दूं?

इतनेमें उसने रामटहल साईसको सिरपर कपड़ोंका गट्ठर लिये बाहर जाते देखा। केसर महरी भी एक गट्ठर सिरपर रखे हुए थी। पीछे-पीछे रतनसिंह हाथमें प्रतिज्ञा-पत्र लिये जा रहे थे। उनके चेहरेपर ग्लानिकी झलक थी जैसे कोई सच्चा आदमी झूठी गवाही देने जा रहा हो।

गौराको देखकर उन्होंने आंखें फेर लीं और चाहा कि उसकी निगाह बचाकर निकल जाऊं। गौराको ऐसा जान पड़ा कि उनकी आंखें डबडबाई हुई हैं। वह राह रोक-कर बोली—जरा सुनते जाओ।

रतन—जाने दो, दिक न करो, लोग बाहर खड़े हैं।

उन्होंने चाहा कि पत्रको छिपा लूं पर गौराने उसे उनके हाथसे छीन लिया, उसे गौरसे पढ़ा और एक क्षण चिन्ता-मग्न रहनेके बाद बोली—वह साड़ी भी लेते जाओ।

रतन—रहने दो, अब तो मैंने झूठ लिख ही दिया।

गौरा—मैं क्या जानती थी कि तुम ऐसी कड़ी प्रतिज्ञा कर रहे हो।

रतन—यह तो मैं तुमसे पहले ही कह चुका था।

गौरा—मेरी भूल थी, क्षमा कर दो और इसे लेते जाओ।

रतन—जब तुम इसे देना अशकुन समझती हो तो रहने दो, तुम्हारी खातिर थोड़ासा झूठ बोलनेमें मुझे कोई आपत्ति नहीं है।

गौरा—नहीं, लेते जाओ। अमङ्गलके भयसे तुम्हारी आत्माका हनन नहीं करना चाहती।

यह कहकर उसने अपनी सुहागकी साड़ी उठाकर पतिके हाथोंमें रख दी। रतनने देखा, गौराके चेहरेपर एक रङ्ग आता है एक रङ्ग जाता है जैसे कोई रोगी अन्तरस्थ विषम वेदनाको दबानेकी चेष्टा कर रहा हो। उन्हें अपनी अहृदयतापर लज्जा आयी। हा! केवल अपने सिद्धान्तकी रक्षाके लिये, अपनी आत्माके सम्मानके लिये, मैं इस देवीके भावोंका वध कर रहा हूं! यह अत्याचार है। साड़ी गौराको देकर बोले—तुम इसे रख लो, मैं प्रतिज्ञापत्रको फाड़े डालता हूं।

गौराने दृढ़तासे कहा—तुम न ले जाओगे तो मैं खुद जाकर दे आऊंगी।

रतनसिंह विवश हो गये। साड़ी ली और बाहर चले आये।

सुहागकी साड़ी

(४)

उसी दिनसे गौराके हृदयपर एक बोझ-सा रहने लगा। वह दिल बहलानेके लिये नाना उपाय करती, जलसोंमें भाग लेती, सैर करने जाती, मनोरञ्जक पुस्तकें पढ़ती, यहांतक कि कई बार नियमके विरुद्ध थियेटरोंमें भी गयी, किसी प्रकार अमङ्गल कल्पनाको शान्त करना चाहती थी पर यह आशङ्का एक मेघ-मण्डलकी भांति उसके हृदयपर छायी रहती थी।

जब एक पूरा महीना गुजर गया और उसकी मानसिक वेदना दिनोंदिन बढ़ती ही गयी तो कुंअर महाशयने उसे कुछ दिनोंके लिये अपने इलाकेपर ले जानेका निश्चय किया। उनका मन उन्हें उनके आदर्श-प्रेमपर नित्य तिरस्कार किया करता था। वह अक्सर देहातोंमें प्रचारका काम करने जाया करते थे। पर अब अपने गांवसे बाहर न जाते, या जाते तो सन्ध्यातक जरूर लौट आते। उनकी एक दिनकी देर, उनके साधारण सिरदर्द और जुकाम उसे अव्यवस्थित कर देते थे। वह बहुधा बुरे स्वप्न देखा करती। किसी अनिष्टके काल्पनिक अस्तित्वकी साया उसे अपने चारों ओर मण्डलाती हुई प्रतीत होती थी।

वह तो देहातमें पड़ी हुई आशंकाओंकी कठपुतली बनी हुई थी। इधर उसकी सुहागकी साड़ी स्वदेश-प्रेमकी वेदीपर भस्म होकर ऋद्धि-प्रदायिनी भभूत बनी हुई थी।

दूसरे महीनेके अन्तमें रतनसिंह उसे लेकर लौट आये।

(५)

गौराको वापस आये तीन-चार दिन हो चुके थे पर असबाबके संभालने और नियत स्थानपर रखनेमें वह इतनी व्यस्त रही कि घरसे बाहर न निकल सकी थी। कारण यह था कि केसर महरी उसके जानेके दूसरे ही दिन छोड़कर चली गयी थी और अभी उतनी चतुर दूसरी महरी मिली न थी। कुंअर साहबका साईस रामटहल भी छोड़ गया था। बेचारे कोचवानको साईसका भी काम करना पड़ता था।

सन्ध्याका समय था। गौरा बरामदेमें बैठी आकाशकी ओर एकटक होकर ताक रही थी। चिन्ताग्रस्त प्राणियोंका एकमात्र यही अवलम्ब है। सहसा रतनसिंहने आकर कहा—चलो आज तुम्हें स्वदेशी बाजारकी सैर करा लावें। यह मेरा ही प्रस्ताव था पर चार दिन यहां आये हो गये उधर जानेका अवकाश ही न मिला।

सुहागकी साड़ी

गौरा—मेरा तो जानेको जी नहीं चाहता। यहीं बैठकर कुछ बातें करो।

रतन—नहीं, चलो देख आवें। एक घण्टेमें लौट आवेंगे।

अन्तमें गौरा राजी हो गयी। इधर महीनोंसे वह बाहर न निकली थी। आज उसे चारों तरफ एक विचित्र शोभा दिखायी दी। बाजार कभी इतनी रौनकपर न था। वह स्वदेशी बाजारमें पहुंची तो जुलाहों और कोरियोंको अपनी-अपनी दूकानें सजाये बैठे देखा। सहसा एक वृद्ध कोरीने आकर रतनसिंहको सलाम किया। रतनसिंह चौंककर बोले:—

रामटहल, तुम अब कहां हो?

रामटहलका चेहरा श्रीसम्पन्न था। उसके अङ्ग-अङ्गसे आत्म-सम्मानकी आभा झलक रही थी। आंखोंमें गौरव-ज्योति थी। रतनसिंहको कभी अनुमान न हुआ था कि अस्तबल साफ करनेवाला बुड्ढा रामटहल इतना सौम्य, इतना भद्र पुरुष है। वह बोला—सरकार अब तो अपना कारबार करता हूं। जबसे आपकी गुलामी छोड़ी तबसे अपने काममें लग गया। आप लोगोंकी निगाह हम गरीबों-

पर हो गयी कि हमारी भी गुजर हो रही है, नहीं आप तो जानते हैं किस हालतमें पड़ा हुआ था। जातका कोरी हूं, पर पापी पेटके लिये चमार बन गया था।

रतन--तो भई, अब मुंह मीठा कराओ। यह बाजार लगानेकी मेरी ही सलाह थी, बिक्री तो अच्छी होती है?

रामटहल—हां, सरकार, आजकल खूब बिक्री हो रही है। माल हाथोंहाथ उड़ जाता है, यहां बैठते हुए एक महीना हो गया है पर आपकी कृपासे लोगोंके चार पैसे लेने-देने थे वे बेबाक हो गये। भगवानकी दयासे रूखा-सूखा भोजन भी दोनों समय मिल जाता है, और क्या चाहिये। मालिकनको सुहागकी साड़ीका होलीमें आना कहिये और बाजारका चमकना कहिये। लोगोंने कहा, जब इतने बड़े आदमी होकर ऐसे शकुनकी चीजकी परवा नहीं करते तो फिर हम ही विदेशी कपड़े क्यों रखें। जिस दिन होली-जली है उसके दो-तीन दिन पहले ही सरकार इलाके-पर चले गये थे। उसके पहले भी सरकार कई दिनोंतक घरसे बहुत कम निकले थे। मैं तो यही कहूंगा कि यह सारी माया उसी सुहागकी साड़ीकी है।

इतनेमें एक अधेड़ स्त्री गौराके सामने आकर बोली—बहूजी, मुझे भूल तो नहीं गयीं ?

गौराने सिर उठाया तो सामने केसर महरी खड़ी थी। वह सुन्दर साड़ी पहने हुए थी, हाथ-पांवमें मामूली गहने भी थे, चेहरा खिला हुआ था। स्वाधीन जीवनका गौरव एक-एक भावसे प्रस्फुटित हो रहा था।

गौराने कहा—इतनी जल्द भूल जाऊंगी ? अब कहां हो ? हमें लौटने भी न दिया, बीचहीमें उड़ भागीं।

केसर—क्या करूं सरकार, अपना काम चलते देखकर सबर न हो सका। जबतक रोजगार न चलता था तबतक लाचारी थी। पेटके लिये सेवा-टहल, करम-कुकरम सभी करना पड़ता था। अब आप लोगोंकी दयासे हमारे दिन भी लौटे हैं, अब दूसरा काम नहीं किया जाता। अगर बाजारका यही रंग रहा तो अपनी कमाई खाये न चुकेगी। यह सब आपकी साड़ीकी महिमा है। उसकी बदौलत हम गरीबोंके कितने ही घर बस गये। एक महीना पहले इन दूकानवालोंमेंसे किसीको रोटियोंका ठिकाना न था। कोई साईसी करता था, कोई तासे बजाता था, यहांतक कि कई आदमी मेहतरका काम करते थे। कितने ही भीख

मांगते थे। अब सब अपने धन्धेमें लग गये है। सच पूछो तो तुम्हारे सुहागकी साड़ीने हमें सुहागिन वना दिया, नहीं तो हम सुहागिन होते हुए भी विधवाएं थीं। सच कहती हूं, सैकड़ों जबानोंसे नित्य यही दुआ निकलती है कि आपका सुहाग अमर हो, जिसने हमारी रांड़ जातको सुहाग दान दिया।

रतनसिंह एक दूकानपर बैठकर कुछ कपड़े देखने लगे। गौराका भावुक हृदय आनन्दसे पुलकित हो रहा था। उसकी सारी अमङ्गल कल्पनाएं स्वप्नवत् विच्छिन्न होती जाती थीं। आंखें सजल हो गयी थीं और सुहागकी देवी अश्रु-सिञ्चित नेत्रोंके सामने खड़ी आंचल फैलाकर उसे आशीर्वाद दे रही थी।

उसने रतनसिंहको भक्तिपूर्ण आंखोंसे देखकर कहा—मेरे लिये भी एक साड़ी ले लो—हां, यह मुझे पसन्द है, यही ले लो।

(६)

जब गौरा यहांसे चली तो सड़ककी बिजलियां जल चुकी थीं। सड़कोंपर खूब प्रकाश था। उसका हृदय भी आनन्दके प्रकाशसे जगमगा रहा था।

सुहागकी साड़ी

रतनसिंहने पूछा—सीधे घर चलूं ?

गौरा—नहीं, छावनीकी तरफ होते चलो !

रतन—बाजार खूब सजा हुआ था।

गौरा—यह जमीन लेकर एक स्थायी बाजार बनवा दो। स्वदेशी कपड़ोंकी दूकानें हों और किसीसे किराया न लिया जाय।

रतन—बहुत खर्च पड़ेगा।

गौरा—मकान बेच दो, रुपये ही रुपये हो जायंगे।

रतन—और रहें पेड़ तले ?

गौरा—नही, गांववाले मकानमें।

रतन—सोचूंगा ?

गौरा—(जरा देरमें)—इलाके भरमें खूब कपासकी खेती कराओ, जो कपास बोये, उसकी बेगार माफ कर दो।

रतन—हां, तद्बीर अच्छी है, दूनी उपज हो जायगी।

गौरा—(कुछ देरतक सोचनेके बाद) लकड़ी बिना दाम दो तो कैसा हो ? जो चाहे चरखे बनवानेके लिये काट ले जाय।

रतन—लूट मच जायगी।

गौरा—ऐसी बेईमानी कोई न करेगा।

जब उसने गाड़ीसे उतरकर घरमें कदम रखा तो उसका चित्त शुभ कल्पनाओंसे प्रफुल्लित हो रहा था। मानों कोई बछड़ा खूंटेसे छूटकर किलोलें कर रहा हो।

———

दो भाई

(१)

तःकाल सूर्यकी सुहावनी सुनहरी धूपमें कलावती दोनों बेटोंको जांघोंपर बैठा दूध और रोटी खिलाती थी। केदार बड़ा था, माधव छोटा। दोनों मुंहमें कौर लिये, कई पग उछल-कूदकर फिर जांघोंपर आ बैठते और अपनी तोतली बोलीमें इस प्रार्थनाकी रट लगाते थे जिसमें एक पुराने सहृदय कविने किसी जाड़ेके सताये हुए बालकके हृदयोद्गारको प्रकट किया है।

"दैव दैव घाम करो, तुम्हरे बालकको लगता जाड़"

मां उन्हें चुमकारकर बुलाती और बड़े-बड़े कौर खिलाती। उसके हृदयमें प्रेमकी उमंग थी और नेत्रोंमें गर्व-की झलक। दोनों भाई बड़े हुए। साथ-साथ गलेमें बाहें डाले खेलते थे। केदारकी बुद्धि चुस्त थी। माधवका शरीर। दोनोंमें इतना स्नेह था कि साथ-साथ पाठशाला

जाते, साथ-साथ खाते और साथ-ही-साथ रहते थे। दोनों भाइयोंका ब्याह हुआ। केदारकी बहू चम्पा अमितभाषिणी और चंचला थी। माधवकी बधू श्यामा सांवली सलोनी, रूपराशिकी खानि थी। बड़ी ही मृदुभाषिणी, बड़ी ही सुशीला और शान्तस्वभावा थी।

केदार चम्पापर मोहे और माधव श्यामापर रीझे। परन्तु कलावतीका मन किसीसे न मिला। वह दोनोंसे प्रसन्न और दोनोंसे अप्रसन्न थी। उसकी शिक्षा-दीक्षाका बहुत अंश इस व्यर्थके प्रयत्नमें व्यय होता था कि चम्पा अपनी कार्यकुशलताका एक भाग श्यामाके शान्त स्वभावसे बदल ले।

दोनों भाई सन्तानवान हुए। हरा-भरा वृक्ष खूब फैला और फलोंसे लद गया। कुत्सित वृक्षमें केवल एक फल दृष्टिगोचर हुआ, वह भी कुछ पीलासा मुरझाया हुआ। किन्तु दोनों अप्रसन्न थे। माधवको धन-सम्पत्तिकी लालसा थी और केदारको सन्तानकी अभिलाषा।

भाग्यकी इस कूटनीतिने शनैः शनैः द्वेषका रूप धारण किया, जो स्वाभाविक था। श्यामा अपने लड़कोंके संवारने-सुधारनेमें लगी रहती; उसे सिर उठानेकी फुरसत नहीं

मिलती थी। बेचारी चम्पाको चूल्हेमें जलना और चक्कीमें पिसना पड़ता। यह अनीति कभी-कभी कटु शब्दोंमें निकल जाती। श्यामा सुनती, कुढ़ती और चुपचाप सह लेती। परन्तु उसकी यह सहनशीलता चम्पाके क्रोधको शान्त करनेके बदले और बढ़ाती। यहांतक कि प्याला लबालब भर गया। हिरन भागनेको राह न पाकर शिकारी-की तरफ लपका। चम्पा और श्यामा समकोण बनानेवाली रेखाओंकी भांति अलग हो गयीं। उस दिन एक ही घरमें दो चूल्हे जले, परन्तु भाइयोंने दानेकी सूरत न देखी और कलावती सारे दिन रोती रही।

(२)

कई वर्ष बीत गये। दोनों भाई जो किसी समय एक ही पालथीपर बैठते थे, एक ही थालीमें खाते थे और एक ही छातीसे दूध पीते थे, उन्हें अब एक घरमें, एक गांवमें रहना कठिन हो गया। परन्तु कुलकी साखमें बट्टा न लगे, इसलिये ईर्ष्या और द्वेषकी धधकती हुई आगको राखके नीचे दबानेकी व्यर्थ चेष्टा की जाती थी। उन लोगोंमें अब भ्रातृ-स्नेह न था। केवल भाईके नामकी लाज थी। मां अब

भी जीवित थी, पर दोनों बेटोंका वैमनस्य देखकर आँसू बहाया करती। हृदयमें प्रेम था, पर नेत्रोंमें अभिमान न था। कुसुम वही था, परन्तु वह छटा न थी।

दोनों भाई जब लड़के थे तब एकको रोते देख दूसरा भी रोने लगता था, तब वह नादान, बेसमझ और भोले थे। आज एकको रोते हुए देख दूसरा हँसता और तालियां बजाता। अब वह समझदार और बुद्धिमान हो गये थे।

जब उन्हें अपने परायेको पहचान न थी उस समय यदि कोई छेड़नेके लिये एकको अपने साथ ले जानेकी धमकी देता तो दूसरा जमीनपर लोट जाता और उस आदमीका कुर्ता पकड़ लेता। अब यदि एक भाईको मृत्यु भी धमकाती तो दूसरेके नेत्रोंमें आंसू न आते। अब उन्हें अपने परायेकी पहचान हो गयी थी।

बेचारे माधवको दशा शोचनीय थी। खर्च अधिक था और आमदनी कम। उसपर कुल मर्यादाका निर्वाह। हृदय चाहे रोये, पर होंठ हँसते रहें। हृदय चाहे मलीन हो पर कपड़े मैले न हों। चार पुत्र थे, चार पुत्रियां, और आवश्यक वस्तुयें मोतियोंके मोल। कुछ पाइयोंको जमींदारी कहांतक सम्हालतो। लड़कोंका ब्याह अपने वशकी बात थी, पर

लड़कियोंका विवाह कैसे टल सकता था। दो पाई जमीन पहली कन्याके विवाहकी भेंट हो गयी। उसपर भी बराती बिना भात खाये आंगनसे उठ गये। शेष दूसरी कन्याके विवाहमें निकल गयी। सालभर बाद तीसरी लड़कीका विवाह हुआ, पेड़-पत्ते भी न बचे। हां, अबकी डाल भर-पूर थी। परन्तु दरिद्रता और धरोहरमें वही सम्बन्ध है जो मांस और कुत्तेमें। इस कन्याका अभी गौना न हुआ था कि माधोपर दो सालके बकाया लगानका वारन्ट आ पहुंचा। कन्याके गहने गिरो (बन्दक) रखे गये। गला छूटा। चम्पा इसी समयकी ताकमें थी। तुरत नये-नये नातेदारोंको सूचना दी, तुम लोग बेसुध बैठे हो, यहां गहनोंका सफाया हुआ जाता है। दूसरे दिन एक नाई और दो ब्राह्मण माधवके दरवाजेपर आकर बैठ गये। बेचारेके गलेमें फांसी पड़ गयी। रुपये कहांसे आवें, न जमीन न जायदाद, न बाग न बगीचा। रहा विश्वास, वह कभीका उठ चुका था; अब यदि कोई सम्पत्ति थी तो केवल वही दो कोठरियां, जिनमें उसने अपनी सारी आयु बितायी थी; और उनका कोई ग्राहक न था। विलम्बसे नाक कटी जाती थी। विवश होकर केदारके पास आया और आंखमें आंसू

भरे बोला, भैया, इस समय मैं बड़े संकटमें हूं, मेरी सहायता करो।

(३)

केदारने उत्तर दिया—मद्धू! आजकल मैं भी तंग हो रहा हूं, तुमसे सच कहता हूं।

चम्पा अधिकारपूर्ण स्वरसे बोली, अरे, तो क्या इनके लिये भी तंग हो रहे हैं? अलग भोजन करनेसे क्या इज्जत अलग हो जायगी?

केदारने स्त्रीकी ओर कनखियोंसे ताककर कहा, नहीं नहीं, मेरा यह प्रयोजन नहीं था। हाथ तंग है तो क्या कोई-न-कोई प्रबन्ध किया ही जायगा।

चम्पाने माधवसे पूछा, पांच बीससे कुछ ऊपर ही पर गहने रखे थे न?

माधवने उत्तर दिया, हां! व्याज सहित कोई सवा सौ रुपये होते हैं।

केदार रामायण पढ़ रहे थे। फिर पढ़नेमें लग गये। चम्पाने तत्वकी बातचीत शुरू की—रुपया बहुत है, हमारे पास होता तो कोई बात न थी। परन्तु हमें भी दूसरेसे

दिलाना पड़ेगा और महाजन बिना कुछ लिखाये-पढ़ाये रुपया देते नहीं।

माधवने सोचा, यदि मेरे पास कुछ लिखाने-पढ़ानेको होता तो क्या और महाजन मर गये थे, तुम्हारे दरवाजे आता क्यों? बोला, लिखने-पढ़नेको मेरे पास है ही क्या? जो कुछ जगह जायदाद है वह यही घर है।

केदार और चम्पाने एक दूसरेको मर्मभेदी नयनोंसे देखा और मन-ही-मन कहा, क्या आज सचमुच जीवनकी प्यारी अभिलाषायें पूरी होंगी? परन्तु हृदयकी यह उमंग मुंहतक आते-आते गम्भीर रूप धारण कर गयी। चम्पा बड़ी गम्भीरतासे बोली, घरपर तो कोई महाजन कदाचित् ही रुपया दे। शहर हो तो कुछ किराया ही आवे, पर गंवईमें तो कोई सेंतमें रहनेवाला भी नहीं। फिर साझेकी चीज ठहरी।

केदार डरे कि कहीं चम्पाकी कठोरतासे खेल बिगड़ न जाय। बोले, एक महाजनसे मेरी जान-पहिचान है, वह कदाचित् कहने-सुननेमें आ जाय।

चम्पाने गर्दन हिलाकर इस युक्तिकी सराहना की और बोली, पर दो-तीन बीससे अधिक मिलना कठिन है।

केदारने जानपर खेलकर कहा, अरे बहुत दबानेसे चार बीस हो जायंगे और क्या।

अबकी चम्पाने तीव्र दृष्टिसे केदारको देखा और अनमनीसी होकर बोली, महाजन ऐसे अन्धे नहीं होते।

माधव अपने भाई भावजके इस गुप्त रहस्यको कुछ-कुछ समझता था, वह चकित था कि इन्हें इतनी बुद्धि कहांसे मिल गयी। बोला, और रुपये कहांसे आवेंगे?

चम्पा चिढ़कर बोली, और रुपयोंके लिये और फिक्र करो। सवा सौ रुपये इन दो कोठरियोंके इस जन्ममें कोई न देगा, चार बीस चाहो तो एक महाजनसे दिला दूं, लिखा-पढ़ी कर लो।

माधव इन रहस्यमय बातोंसे सशंक हो गया। उसे भय हुआ कि यह लोग मेरे साथ कोई गहरी चाल चल रहे हैं। दृढ़ताके साथ अड़कर बोला, और कौनसी फिक्र करूं? गहने होते तो कहता लाओ रख दूं। यहां तो कच्चा सूत भी नहीं है। जब बदनाम हुए तो क्या दसके लिए, क्या पचासके लिए दोनों एक ही बात है। यदि घर बेचकर मेरा नाम रह जाय तो यहांतक तो स्वीकार है, परन्तु घर भी बेचूं और उसपर भी प्रतिष्ठा धूलमें मिले, ऐसा मैं न

करूंगा। केवल नामका ध्यान है, नहीं एक बार नाहीं कर जाऊं तो मेरा कोई क्या करेगा ? और सच पूछो तो मुझे अपने नामकी कोई चिन्ता नहीं है । मुझे कौन जानता है? संसारतो भैयाको हँसेगा।

केदारका मुंह सूख गया। चम्पा भी चकरा गयी। वह बड़ी चतुर वाक्यनिपुण रमणी थी। उसे माधव जैसे गँवारसे ऐसी दृढ़ताकी आशा न थी। उसकी ओर आदरसे देखकर बोली, लाल्लू, कभी-कभी तुम भी लड़कोंकीसी बातें करते हो। भला इस झोपड़ापर कौन सौ रुपये निकालकर देगा? तुम सवा सौके बदले सौ ही दिलाओ, मैं आज ही अपना हिस्सा बेचती हूं। उतनाही मेरा भी तो है। घरपर तो तुमको वही चार बीस मिलेंगे। हां, और रुपयोंका प्रबंध हम और आप कर दगे। इज्जत हमारी-तुम्हारी एक ही है, वह न जाने पायेगी। वह रुपया अलग खातेमें चढ़ा लिया जायगा।

माधवकी वाञ्छायें पूरी हुईं। उसने मैदान मार लिया। सोचने लगा, मुझे तो रुपयोंसे काम है, चाहे एक नहीं दस खातेमें चढ़ा लो। रहा मकान, वह जीते जी नहीं छोड़नेका। प्रसन्न होकर चला। इसके जानेके बाद केदार और चम्पाने

कपट भेष त्याग दिया और बड़ी देरतक एक दूसरेको इस कड़े सौदेका दोषी सिद्ध करनेकी चेष्टा करते रहे। अन्तमें मनको इस तरह सन्तोष दिया कि भोजन बहुत मधुर नहीं, किन्तु भर कठौत तो है। घर, हां देखेंगे कि श्यामा रानी इस घरमें कैसे राज करती है।

केदारके दरवाजेपर दो बैल खड़े हैं। इनमें कितनी संघ-शक्ति, कितनी मित्रता और कितना प्रेम है। दोनों एक ही जुयेमें चलते हैं, बस इनमें इतना ही नाता है। किन्तु अभी कुछ दिन हुए जब इनमेंसे एक चम्पाके मैके मंगनी गया था तो दूसरेने तीन दिनतक नादमें मुंह नहीं डाला। परन्तु शोक, एक गोदके खेले भाई, एक छातीसे दूध पीनेवाले आज इतने बेगाने हो रहे हैं कि एक घरमें रहना भी नहीं चाहते।

प्रातःकाल था। केदारके द्वारपर गांवके मुखिया और नम्बरदार विराजमान थे। मुंशी दातादयाल अभिमानसे चारपाईपर बैठे रेहनका मसविदा तैयार करनेमें लगे थे। बारम्बार कलम बनाते और बारम्बार कत रखते, पर कत-की शान न सुधरती थी। केदारका मुखारविन्द विकसित था और चम्पा फूली नहीं समाती थी। माधव कुम्हलाया और म्लान था।

दो भाई

मुखियाने कहा, भाई ऐसा हित न भाई ऐसा शत्रु। केदारने छोटे भाईकी लाज रख ली।

नम्बरदारने भी अनुमोदन किया—भाई हो तो ऐसा हो।

मुख्तारने कहा—भाई, सपूतोंका यही काम है।

दातादयालने पूछा—रेहन लिखनेवालेका नाम ?

बड़े भाई बोले – माधव वल्द शिवदत्त।

और लिखानेवालेका ?

केदार वल्द शिवदत्त।

माधवने बड़े भाईकी ओर चकित होकर देखा। आंखें डबडबा आयीं। केदार उसकी ओर देख न सका। नम्बरदार मुखिया और मुख्तार भी विस्मित हुए। क्या केदार खुद ही रुपया दे रहा है ? बातचीत तो किसी साहूकारकी थी। जब घरहीमें रुपया मौजूद है तो इस रेहननामेकी आवश्यकता ही क्या थी ? भाई-भाईमें इतना अविश्वास ! अरे, राम ! राम ! क्या माधव ८०) को भी महंगा है ? और यदि दबा ही बैठता तो क्या रुपये पानीमें चले जाते ?

सभीकी आंखें सैन द्वारा परस्पर बातें करने लगीं, मानो आश्चर्यकी अथाह नदीमें नौकायें डगमगाने लगीं।

श्यामा दरवाजेकी चौखटपर खड़ी थी। वह सदा

केदारकी प्रतिष्ठा करती थी, परन्तु आज केवल लोक-रीतिने उसे अपने जेठको आड़े हाथों लेनेसे रोका।

बूढ़ी अम्मांने सुना तो सूखी नदी उमड़ आयी। उसने एक बार आकाशकी ओर देखा और माथा ठोक लिया।

तब उसे उस दिनका स्मरण हुआ जब ऐसा ही सुहावना सुनहरा प्रभात था और दो प्यारे-प्यारे बच्चे उसकी गोदमें बैठे हुए उछल-कूदकर दूध रोटी खाते थे। उस समय माताके नेत्रोंमें कितना अभिमान था, हृदयमें कितनी उमङ्ग और कितना उत्साह!

परन्तु आज, आह! आज नयनोंमें लज्जा है और हृदयमें शोक सन्ताप। उसने पृथिवीकी ओर देखकर कातर स्वरमें कहा, हे नारायण! क्या ऐसे पुत्रोंको मेरी ही कोखमें जन्म लेना था।

ब्रह्मका स्वाग

स्त्री—

मैं वास्तवमें अभागिनी हूं, नहीं तो क्या मुझे नित्य ऐसे-ऐसे घृणित दृश्य देखने पड़ते। शोककी बात यह है कि वे मुझे केवल देखने ही नहीं पड़ते, वरन् दुर्भाग्यने उन्हें मेरे जीवनका मुख्य भाग बना दिया है। मैं उस सुपात्र ब्राह्मणकी कन्या हूं जिसकी व्यवस्था बड़े-बड़े गहन धार्मिक विषयोंपर सर्वमान्य समझी जाती है। मुझे याद नहीं, घरपर कभी बिना स्नान और देवोपासना किये पानी-की एक बून्द भी मुंहमें डाली हो। मुझे एक वार कठिन ज्वरमें स्नानादिके बिना दवा पीनी पड़ी थी, उसका मुझे महीनों खेद रहा। हमारे घरमें धोबी कदम नहीं रखने पाता था, चमारिनें दालानमें भी नहीं पैठ सकती थीं। किन्तु यहां आकर मैं मानों भ्रष्टलोकमें पहुंच गयी हूं। मेरे स्वामी बड़े दयालु, बड़े चरित्रवान और बड़े सुयोग्य पुरुष हैं। उनके यहां सद्गुण देखकर मेरे पिताजी उनपर मुग्ध हो गये थे।

लेकिन शोक! वे क्या जानते थे कि यहां लोग अघोरपन्थ-के अनुयायी हैं। सन्ध्या और उपासना तो दूर रही, कोई नियमितरूपसे स्नान भी नहीं करता। बैठकमें नित्य मुसल्मान, क्रिस्तान सब आया-जाया करते हैं और स्वामी-जी वहीं बैठे-बैठे पानी, दूध, चाय पी लेते हैं। इतना ही नहीं, वह वहीं बैठे-बैठे मिठाइयां भी खा लेते हैं। अभी कलकी बात है, मैंने उन्हें लेमोनेड पीते देखा था। साईस जो चमार है, बेरोक-टोक घरमें चला आता है। सुनती हूं, वे अपने मुसलमान मित्रोंके घर दावतें खाने भी जाते हैं। यह भ्रष्टाचार मुझसे नहीं देखा जाता। मेरा चित्त घृणासे व्यस्त हो जाता है। जब वे मुस्कुराते हुए मेरे समीप आ जाते हैं और मेरा हाथ पकड़कर अपने समीप बैठा लेते हैं तो मेरा जी चाहता है कि धरती फट जाय और मैं उसमें समा जाऊं। हा हिन्दू जाति! तूने हम स्त्रियोंको अपने पुरुषोंकी दासी बनना ही क्या हमारे जीवनका परम कर्तव्य बना दिया! हमारे विचारोंका, हमारे सिद्धान्तोंका, यहां-तक कि हमारे धर्मका भी कुछ मूल्य नहीं रहा!

* * * * *

अब मुझे धैर्य नहीं। आज मैं इस अवस्थाका अन्त कर
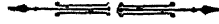
देना चाहती हूं। मैं इस आसुरिक भ्रष्ट जालसे निकल जाऊंगी। मैंने अपने पिताकी शरण जानेका निश्चय कर लिया है। आज यहां सहभोज हो रहा है, मेरे पति उसमें सम्मिलित ही नहीं, वरन् उसके मुख्य प्रेषकोंमें हैं। इन्हींके उद्योग तथा प्रेरणासे यह विधर्मीय अत्याचार हो रहा है। समस्त जातियोंके लोग एक साथ बैठकर भोजन कर रहे हैं। सुनती हूं, मुसलमान भी एक ही पंक्तिमें बैठे हुए हैं। आकाश क्यों नहीं गिर पड़ता! क्या भगवान धर्मकी रक्षा करनेके लिये अब अवतार न लेंगे? ब्राह्मण जाति अपने निजी बन्धुओंके सिवाय अन्य ब्राह्मणोंका भी पकाया भोजन नहीं करती, वही महान् जाति इस अधोगतिको पहुंच गयी कि कायथों, बनियों, मुसलमानोंके साथ बैठकर खानेमें लेशमात्र भी सङ्कोच नहीं करती, बल्कि इसे जातीय गौरव, जातीय एकताका हेतु समझती है।

पुरुष—

वह कौन शुभ घड़ी होगी कि इस देशकी स्त्रियोंमें ज्ञान-का उदय होगा और वे राष्ट्रीय सङ्गठनमें पुरुषोंकी सहायता करेंगी? हम कबतक ब्राह्मण अब्राह्मणके गोरखधन्धेमें फंसे रहेंगे? हमारी विवाह-प्रणाली कबतक गोत्रके बन्धनमें

जकड़ी रहेगी? हम कब जानेंगे कि स्त्री और पुरुषके विचारोंकी अनुकूलता और समानता गोत्र और वर्णसे कहीं अधिक महत्व रखती है? यदि ऐसा ज्ञात होता तो मैं वृन्दाका पति न होता और न वृन्दा मेरी पत्नी। हम दोनों-के विचारोंमें जमीन और आसमानका अन्तर है। यद्यपि वह प्रत्यक्ष नहीं कहती, किन्तु मुझे विश्वास है कि वह मेरे विचारोंको घृणाकी दृष्टिसे देखती है। मुझे ऐसा ज्ञात होता है कि वह मुझे स्पर्श भी नहीं करना चाहती। यह उसका दोष नहीं, यह हमारे माता-पिताका दोष है जिन्होंने हम दोनोंपर ऐसा घोर अत्याचार किया।

* * * * *

कल वृन्दा खुल पड़ी। मेरे कई मित्रोंने सहभोजका प्रस्ताव किया था। मैंने उनका सहर्ष समर्थन किया। कई दिनके वाद-विवादके पश्चात् अन्तको कल कुछ गिने-गिनाये सज्जनोंने सहभोजका सामान कर ही डाला। मेरे अति-रिक्त केवल चार और सज्जन ब्राह्मण थे, शेष अन्य अन्य जातियोंके लोग थे। यह उदारता वृन्दाके लिये असह्य हो गयी। जब मैं भोजन करके लौटा तो वह ऐसी विकल थी मानो उसके मर्मस्थलपर आघात हुआ हो। मेरी ओर

विवादपूर्ण नेत्रोंसे देखकर बोली—"अब तो स्वर्गका द्वार अवश्य खुल गया होगा !"

यह कठोर शब्द मेरे हृदयपर तीरके समान लगे। ऐंठकर बोला—"स्वर्ग और नर्ककी चिन्तामें वे रहते हैं जो अपाहिज हैं, कर्तव्यहीन हैं, निर्जीव हैं। हमारा स्वर्ग और नर्क सब इसी पृथ्वीपर है। हम इस कर्म क्षेत्रमें कुछ कर जाना चाहते हैं।"

वृन्दा—"धन्य है आपके पुरुषार्थको, आपकी सामर्थ्यका। अब संसारमें सुख और शान्तिका साम्राज्य हो जायगा। आपने संसारका उद्धार कर दिया। इससे बढ़कर उसका और कल्याण क्या हो सकता है !" मैंने झुंझलाकर कहा—"जब तुम्हें इन विषयोंके समझनेकी ईश्वरने बुद्धि ही नहीं दी, तो क्या समझाऊं। इस पारस्परिक भेद-भावसे हमारे राष्ट्रको जो हानि हो रही है, उसे मोटी-सी-मोटी बुद्धिका मनुष्य भी समझ सकता है। इस भेदके मिटानेसे देशका कितना कल्याण होता है; इसमें किसीको सन्देह नहीं। हां, जो जानकर भी अनजान बने, उसकी बात दूसरी है।"

वृन्दा—"बिना एक साथ भोजन किये परस्पर प्रेम उत्पन्न नहीं हो सकता ?"

मैंने इस विवादमें पड़ना अनुपयुक्त समझा। किसी ऐसी नीतिकी शरण लेनी आवश्यक जान पड़ी, जिसमें विवाद-का स्थान ही न हो। वृन्दाकी धर्मपर बड़ी श्रद्धा है, मैंने उसीके शस्त्रसे उसे पराजित करना निश्चय किया। बड़े गम्भीर भावसे बोला—"यदि असम्भव नहीं तो कठिन अवश्य है। किन्तु सोचो तो, यह कितना घोर अन्याय है कि हम सब एक ही पिताकी सन्तान होते हुए, एक दूसरेसे घृणा करें, ऊंच-नीचकी व्यवस्थामें मग्न रहें। यह सारा जगत् उसी परमपिताका विराट रूप है। प्रत्येक जीवमें उसी परमात्माकी ज्योति आलोकित हो रही है। केवल इसी भौतिक परदेने हमें एक दूसरेसे पृथक् कर दिया है। यथार्थ-में हम सब एक हैं। जिस प्रकार सूर्य्यका प्रकाश अलग-अलग घरोंमें जाकर भिन्न नहीं हो जाता, उसी प्रकार ईश्वर-की महान् आत्मा पृथक्-पृथक् जीवोंमें प्रविष्ट होकर विभिन्न नहीं होती······।"

मेरी इस ज्ञान-वर्षाने वृन्दाके शुष्क-हृदयको तृप्त कर दिया। वह तन्मय होकर मेरी बातें सुनती रही। जब मैं चुप हुआ तो उसने मुझे भक्ति-भावसे देखा और रोने लगी।

ब्रह्मका स्वांग

स्त्री—

स्वामीके ज्ञानोपदेशने मुझे सजग कर दिया, मैं अन्धेरे कुंएमें पड़ी थी। इस उपदेशने मुझे उठाकर एक पर्वतके ज्योतिर्मय शिखरपर बैठा दिया। मैंने अपनी कुलीनतासे, झूठे अभिमानसे, अपने वर्णकी पवित्रताके गर्वमें, कितनी आत्माओंका निरादर किया! परमपिता, तुम मुझे क्षमा करो। मैंने अपने पूज्यपाद पतिसे इस अज्ञानके कारण, जो अश्रद्धा प्रकट की है, जो कठोर शब्द कहे हैं, उन्हें क्षमा करना!

जबसे मैंने वह अमृत-वाणी सुनी है, मेरा हृदय अत्यन्त कोमल हो गया है, नाना प्रकारकी सद्कल्पनायें चित्तमें उठती रहती हैं। कल धोबिन कपड़े लेकर आई थी। उसके सिरमें बड़ा दर्द था। पहले मैं उसे इस दशामें देखकर कदाचित मौखिक सहवेदना प्रकट करती, अथवा महरीसे उसे थोड़ा तेल दिलवा देती, पर कल मेरा चित्त विकल हो गया। मुझे प्रतीत हुआ, मानों यह मेरी बहिन है। मैंने उसे अपने पास बैठा लिया और घण्टे भरतक उसके सिरमें तेल मलती रही। उस समय मुझे जो स्वर्गीय आनन्द हो रहा था वह अकथनीय है। मेरा अन्तःकरण किसी प्रबल शक्तिके वशीभूत होकर उसकी ओर खिंचा चला जाता था। मेरी ननदने आकर

मेरे इस व्यवहारपर कुछ नाक-भौं चढ़ायी, पर मैंने लेशमात्र भी परवा न की। आज प्रातःकाल कड़ाकेकी सर्दी थी। हाथ-पांव गले जाते थे। महरी काम करने आयी तो खड़ी कांप रही थी। मैं लिहाफ ओढ़े अंगीठीके सामने बैठी हुई थी। तिसपर भी मुंह बाहर निकालते न बनता था। महरी-की सूरत देखकर मुझे अत्यन्त दुःख हुआ। मुझे अपनी स्वार्थवृत्तिपर लज्जा आयी। इसके और मेरे बीचमें क्या भेद है? इसकी आत्मामें उसी प्रकाशकी ज्योति है। यह अन्याय क्यों? क्या इसीलिये कि मैं संयोगसे एक धनवान पतिकी स्त्री हूं? क्या इसीलिये कि मायाने हममें भेद कर दिया है? मुझे कुछ और सोचनेका साहस नहीं हुआ। मैं उठी, अपनी ऊनी चादर लाकर महरीको ओढ़ा दी और उसे हाथ पकड़कर अंगीठीके पास बिठा लिया। इसके उपरान्त मैंने अपना लिहाफ रख दिया और उसके साथ बैठकर बर्तन धोने लगी। वह सरलहृदया मुझे वहांसे बार बार हटाना चाहती थी। मेरी ननदने आकर मुझे कौतूहलसे देखा और इस प्रकार मुंह बनाकर चली गयी, मानों मैं क्रीड़ा कर रही हूं। सारे घरमें हलचल पड़ गयी। और इस जरासी बात-पर! हमारी आंखोंपर कितने मोटे परदे पड़ गये हैं! हम परमात्माका कितना अपमान कर रहे हैं!

ब्रह्मका स्वांग

पुरुष—

कदाचित् मध्यम पथपर रहना नारी-प्रकृतिहीमें नहीं है—वह केवल सीमाओंपर ही रह सकती है। बृन्दा कहां तो अपनी कुलीनता और अपने कुल-मर्यादपर जान देती थी, कहां अब साम्य और सहृदयताकी मूर्ति बनी हुई है। मेरे उस सामान्य उपदेशका यह चमत्कार है! अब मैं भी अपनी प्रेरक-शक्तियोंपर गर्व कर सकता हूं। मुझे इसमें कोई आपत्ति नहीं है कि वह नीच जातिकी स्त्रियोंके साथ बैठे, हंसे और बोले, उन्हें कुछ पढ़कर सुनाये, लेकिन उनके पीछे अपनेको बिलकुल भूल जाना मैं कदापि पसन्द नहीं कर सकता। तीन दिन हुए मेरे पास एक चमार अपने जमींदारपर नालिश करने आया था। निस्सन्देह जमींदारने उसके साथ ज्यादती की थी, लेकिन वकीलोंका काम मुफ्तमें मुकदमे दायर करना नहीं। फिर एक चमारके पीछे एक बड़े जमींदारसे बैर करूं! ऐसा करू तो वकालत कर चुका! उसके रोनेकी भनक वृन्दाके कानमें भी पड़ गयी। बस, वह मेरे पीछे पड़ गयी, कि इस मुकदमेको जरूर ले लो। मुझसे तर्क-वितर्क करनेपर उद्यत हो गयी। मैंने बहाना करके उसे किसी प्रकार टालना चाहा, लेकिन

उसने मुझसे वकालतनामेपर हस्ताक्षर कराकर तब पिंड छोड़ा। उसका परिणाम यह हुआ कि, पिछले तीन दिन मेरे यहां मुफ्तखोर मुवक्किलोंका तांता लगा रहा और मुझे कई बार वृन्दासे कठोर शब्दोंमें बातें करनी पड़ीं। इसीसे प्राचीन कालके व्यवस्थाकारोंने स्त्रियोंको धार्मिक उपदेशोंका पात्र नहीं समझा था। इनकी समझमें यह नहीं आता कि प्रत्येक सिद्धान्तका व्यावहारिक रूप कुछ और ही होता है। हम सभी जानते हैं कि ईश्वर न्यायशील हैं, किन्तु न्यायके पीछे अपनी परिस्थितिको कौन भूलता है! आत्माकी व्यापकताको यदि व्यवहारमें लाया जाय तो आज संसारमें साम्यका राज्य हो जाय, किन्तु उसी भांति साम्य जैसे दर्शनका एक सिद्धान्त ही रहा है और रहेगा, वैसे ही राजनीति भी एक अलभ्य वस्तु है और रहेगा। हम इन दोनों सिद्धान्तोंकी मुक्तकण्ठसे प्रशंसा करेंगे, उनपर तर्क करेंगे, अपने पक्षको सिद्ध करनेमें उनसे सहायता लेंगे, किन्तु उनका उपयोग करना असम्भव है। मुझे नहीं मालूम था कि वृन्दा इतनी मोटी-सी बात भी न समझेगी?

*   *   *   *

वृन्दाकी बुद्धि दिनोंदिन उलटी ही होती जाती है।

ब्रह्मका स्वांग

आज रसोईमें सबके लिये एक ही प्रकारके भोजन बने। अबतक घरवालोंके लिये महीन चावल पकते थे, तरकारियां घीमें बनती थीं, दूध मक्खन आदि लिया जाता था। नौकरों-के लिये मोटा चावल, मटरकी दाल और तेलकी भाजियां बनती थीं। बड़े-बड़े रईसोंके यहां भी यही प्रथा चली आती है। हमारे नौकरोंने कभी इस विषयमें शिकायत नहीं की। किन्तु आज देखता हूं तो वृन्दाने सबके लिये एक ही भोजन बनवाया है। मैं कुछ बोल न सका, भौंचक्का-सा हो गया। वृन्दा सोचती होगी कि भोजनमें भेद करना नौकरोंपर अन्याय है। कैसा बच्चोंका-सा विचार है! नासमझ! यह भेद सदा रहा है और रहेगा। मैं भी राष्ट्रीय ऐक्यका अनुरागी हूं। समस्त शिक्षित-समुदाय राष्ट्रीयतापर जान देता है। किन्तु कोई स्वप्नमें भी कल्पना नहीं करता कि हम मजदूरों या सेवा-वृत्ति धारियोंको समताका स्थान देंगे। हम उनमें शिक्षाका प्रचार करना चाहते हैं। उनको दीना-वस्थासे उठाना चाहते हैं। यह हवा संसार भरमें फैली हुई है पर इसका मर्म क्या है यह दिलमें सभी समझते हैं, चाहे कोई खोलकर न कहे इसका अभिप्राय यही है कि हमारा राजनैतिक महत्व बढ़े, हमारा प्रभुत्व उदय हो, हमारे

राष्ट्रीय आन्दोलनोंका प्रभाव अधिक हो, हमें यह कहनेका अधिकार हो जाय कि हमारी ध्वनि केवल मुट्ठी भर शिक्षितवर्गहीकी नहीं, वरन् समस्त जातिकी संयुक्त ध्वनि है। पर वृन्दाको यह रहस्य कौन समझावे!

स्त्री—

कल मेरे पति महाशय खुल पड़े। इस समय मेरा चित्त बहुत ही खिन्न है। प्रभो! संसारमें इतना दिखावा, इतनी स्वार्थान्धता है, हम इतने दीन-घातक हैं! उनका उपदेश सुनकर मैं उन्हें देव-तुल्य समझने लगी थी, आज मुझे ज्ञात हो गया कि जो लोग एक साथ दो नावोंपर बैठना जानते हैं, वे ही जातिके हितैषी कहलाते हैं!

कल मेरी ननदकी विदाई थी। वह ससुराल जा रही थीं। बिरादरीकी कितनी ही महिलायें निमन्त्रित थीं। वे उत्तम-उत्तम वस्त्राभूषण पहने कालीनोंपर बैठी हुई थीं। मैं उनका स्वागत कर रही थी। निदान मुझे द्वारके निकट कई स्त्रियां भूमिपर बैठी हुई दिखायी दीं, जहां इन महिलाओंकी जूतियां और स्लीपरें रक्खी हुई थीं। ये बेचारी भी विदाई देखने आयी थीं। मुझे उनका वहां बैठना अनुचित जान पड़ा। मैंने उन्हें भी लाकर कालीनपर बिठा दिया। इसपर

महिलाओंमें मटकियाँ होने लगी और थोड़ी देरमें वे किसी-न-किसी बहानेसे एक-एक करके चली गयीं। मेरे पति महाशयसे किसीने यह समाचार कह दिया। वे बाहरसे क्रोधमें भरे हुए आये और आंखे लाल करके बोले—"यह तुम्हें क्या सूझी है, क्या हमारे मुंहमें कालिख लगवाना चाहती हो! तुम्हें ईश्वरने इतनी बुद्धि भी नहीं दी कि किसे किसके साथ बैठाना चाहिये? भले घरकी महिलाओके साथ नीच स्त्रियोंको बिठा दिया! वे अपने मनमें क्या कहती होंगी? तुमने मुझे कहीं मुंह दिखाने लायक नहीं रखा। "छिः! छिः!!" मैंने सरल भावसे कहा—"इससे महिलाओं-का क्या अपमान हुआ? आत्मा तो सबकी एक है। आभूषणोंसे आत्मा तो ऊंची नहीं हो जाती!"

पति महाशयने होंठ चबाकर कहा—चुप भी रहो, बेसुरा राग अलाप रही हो। बस, वही मुर्गोंकी एक टांग, आत्मा एक है, परमात्मा एक है! न कुछ जानो, न बूझो। सारे शहरमें नक्कू बना दिया, उसपर और बोलनेको मरती हो। उन महिलाओंकी आत्माको कितना दुःख हुआ, कुछ इसपर भी ध्यान दिया?

मैं विस्मित होकर उनका मुंह देखने लगी।

नवजीवन

* * * *
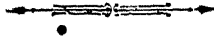
आज प्रातःकाल उठी, तो मैंने एक विचित्र दृश्य देखा। रातको मेहमानोंके जूठे पत्तल, सकोरे, दोने, आदि बाहर मैदानमें फेंक दिये गये थे। पचासों मनुष्य उन पत्तलोंपर गिरे हुए उन्हें चाट रहे थे। हां, मनुष्य थे, वही मनुष्य जो परमात्माके निज-स्वरूप हैं। कितने ही कुत्ते भी उन पत्तलों-पर झपट रहे थे, पर वे कङ्गले कुत्तोंको मार-मारकर भगा देते थे। उनकी दशा कुत्तोंसे भी गयी-बीती थी। यह कौतुक देखकर मुझे रोमाञ्च होने लगा, मेरी आंखोंसे अश्रु-धारा बहने लगी। भगवन्! ये भी हमारे ही भाई बहन हैं, हमारी ही आत्माएं हैं! उनकी ऐसी शोचनीय, दीन-दशा! मैंने तत्क्षण महरीको भेजकर उन मनुष्योंको बुलवाया और जितनी पूरियां मिठाइयां मेहमानोंके लिये रक्खी हुई थीं, सब पत्तलोंमें रखकर उन्हें दे दीं। महरी थर-थर कांप रही थी, सरकार सुनेंगे तो मेरे सिरका एक बाल भी न छोड़ेंगे। लेकिन मैंने उसे ढाढ़स दिया, तब उसकी जान-में-जान आयी।

अभी ये बेचारे कङ्गले मिठाइयां खा ही रहे थे कि पति महाशय मुंह लाल किये हुए आये और अत्यन्त कठोर

स्वरसे बोले—तुमने भंग तो नहीं खा ली ? जब देखो, एक-न-एक उपद्रव खड़ा कर देती हो। मेरी समझमें नहीं आता कि तुम्हें क्या हो गया है। ये मिठाइयां डोमड़ोंके लिये नहीं बनवायी गयी थीं। उनमें घी, शक्कर, मैदा लगा था, जो आजकल मोतियोंके तौल बिक रहा है। हलवाइयोंको दूधके धोये रुपये मजदूरीके दिये गये थे। तुमने उठाकर सब डोमड़ोंको खिला दीं। अब मेहमानोंको क्या खिलाया जायगा ? तुमने मेरी इज्जत बिगाड़नेका प्रण कर लिया है क्या ?

मैंने गम्भीर भावसे कहा—आप व्यर्थ इतने क्रुद्ध होते हैं। आपकी जितनी मिठाइयां मैंने खिला दी है वह मैं मंगवा दूंगी। मुझसे यह नहीं देखा जाता कि कोई आदमी तो मिठाइयां खाय और कोई पत्तलें चाटे। डोमड़े भी तो मनुष्य ही हैं। उनके जीवमें भी तो उसी······।

स्वामीने बात काटकर कहा—रहने भी दो, मरी तुम्हारी आत्मा ! बस, तुम्हारे ही रक्षा करनेसे आत्माकी रक्षा होगी। यदि ईश्वरकी इच्छा होती कि प्राणिमात्रको समान सुख प्राप्त हो तो उसे सबको एक दशामें रखनेसे किसने रोका था ? वह ऊंच-नीचका भेद होने ही क्यों देता है ?

जब उसकी आज्ञाके बिना एक पत्ता भी नहीं हिल सकता, तो इतनी महान् सामाजिक व्यवस्था उसकी आज्ञाके बिना क्योंकर भंग हो सकती है? जब वह स्वयं सर्वव्यापी है तो वह अपनेहीको ऐसी-ऐसी घृणोत्पादक अवस्थाओंमें क्यों रखता है? जब तुम इन प्रश्नोंका कोई उत्तर नहीं दे सकती तो उचित है कि संसारकी वर्तमान रीतियोंके अनुसार चलो। इन बे सिर-पैरकी बातोंसे हंसी और निन्दाके सिवाय और कुछ लाभ नहीं।

मेरे चित्तकी क्या दशा हुई, वर्णन नहीं कर सकती। मैं अवाक् रह गयी। हा स्वार्थ! हा मायान्धकार! हम ब्रह्मका भी स्वांग बनाते हैं!

उसी क्षणसे पतिश्रद्धा और पतिभक्तिका भाव मेरे हृदयसे लुप्त हो गया!

यह घर मुझे अब कारागार लगता है। किन्तु मैं निराश नहीं हूं। मुझे विश्वास है कि जल्द या देरमें, ब्रह्म-ज्योति यहां अवश्य चमकेगी और वह इस अन्धकारको नष्ट कर देगी।

आभूषण

(१)

भूषणोंकी निन्दा करना हमारा उद्देश्य नहीं है। हम असहयोगका उत्पीड़न सह सकते हैं, पर ललनाओंके निर्दय घातक वाक्य-बाणोंको नहीं सह सकते। तो भी इतना अवश्य कहेंगे कि इस तृष्णाकी पूर्तिके लिये जितना त्याग किया जाता है, उसका सदुपयोग करनेसे महान् पद प्राप्त हो सकता है।

यद्यपि हमने किसी रूप-हीना महिलाको आभूषणोंकी सजावटसे रूपवती होते नहीं देखा, तथापि हम यह भी मान लेते हैं कि रूपके लिये आभूषणोंकी उतनी ही जरूरत है, जितनी घरके लिये दीपक की। किन्तु शारीरिक शोभाके लिये हम मनको कितना मलिन, चित्तको कितना अशान्त और आत्माको कितना कलुषित बना लेते हैं, इसका हमें

कदाचित् ज्ञान ही नहीं होता। इस दीपककी ज्योतिमें आंखें धुन्धली हो जाती हैं। यह चमक-दमक कितनी ईर्षा, कितने द्वेष, कितनी प्रतिस्पर्द्धा, कितनी दुश्चिन्ता और कितनी दुराशाका कारण है; इसकी केवल कल्पनासे ही रोंगटे खड़े हो जाते हैं। इन्हें भूषण नहीं, दूषण कहना अधिक उपयुक्त है। नहीं तो यह कब हो सकता था कि कोई नववधू, पतिके घर आनेके तीसरे ही दिन, अपने पतिसे कहती कि "मेरे पिताने तुम्हारे पल्ले बांधकर मुझे तो कुएँमें ढकेल दिया!"

शीतला आज अपने गांवके ताल्लुकेदार कुँअर सुरेशसिंहकी नवविवाहिता बधूको देखने गई थी। उसके सामने ही वह मंत्र-मुग्ध-सी हो गई। बहूके रूप-लावण्यपर नहीं, उसके आभूषणोंकी जगमगाहटपर उसकी टकटकी लगी रही। और वह जबसे घर लौटकर आई, उसकी छातीपर साँप लोटता रहा। अन्तको ज्यों ही उसका पति घर आया, वह उसपर बरस पड़ी, और दिलमें भरा हुआ गुबार पूर्वोक्त शब्दोंमें निकल पड़ा। शीतलाके पतिका नाम विमलसिंह था। उसके पुरखे किसी जमानेमें इलाकेदार थे। इस गाँवपर भी उन्हींका सोलहो आने अधिकार था। लेकिन अब इस घरकी दशा हीन हो गई है। सुरेशसिंहके

पिता जमींदारीके काममें दक्ष थे। विमलसिंहका सब इलाका किसी-न-किसी प्रकारसे उनके हाथ आ गया। विमलके पास सवारीका टट्टू भी न था। उसे दिनमें दो बार भोजन भी मुश्किलसे मिलता था। उधर सुरेशके पास हाथी, मोटर और कई घोड़े थे। दस-पाँच बाहरके आदमी नित्य द्वारपर पड़े रहते थे। पर इतनी विषमता होनेपर भी दोनोंमें भाई-चारा निभाया जाता था, शादी-ब्याहमें, मूंडन-छेदनमें परस्पर आना-जाना होता रहता था। सुरेश विद्या-प्रेमी थे, हिन्दुस्थानमें ऊँची शिक्षा समाप्त करके वह योरप चले गए, और सब लोगोंकी शंकाओंके विपरीत वहांसे आर्य-सभ्यताके परम भक्त बनकर लौटे थे। वहांके जड़वाद, कृत्रिम भोगलिप्सा और अमानुषिक मदांधताने उनकी आँखें खोल दी थीं। पहले वह घरवालोंके बहुत ज़ोर देनेपर भी विवाह करनेको राजी नहीं हुए। लड़कीसे पूर्व परिचय हुए बिना प्रणय नहीं कर सकते थे। पर योरपसे लौटनेपर उनके वैवाहिक विचारोंमें बहुत बड़ा परिवर्तन हो गया। उन्होंने उसी पहलेकी कन्यासे, बिना उसके आचार-विचार जाने हुए, विवाह कर लिया। अब वह विवाहको प्रेमका बंधन नहीं, धर्मका बंधन समझते थे। उसी सौभाग्यवती

वधूको देखनेके लिये आज शीतला, अपनी सासके साथ, सुरेशके घर गई थी। उसीके आभूषणोंका छटा देखकर वह मर्माहत-सी हो गई है। विमलने व्यथित होकर कहा – तो माता पितासे कहा होता, सुरेशसे ब्याह कर देते। वह तुम्हें गहनोंसे लाद सकते थे।

शीतला—तो गाली क्यों देते हो ?

विमल—गाली नहीं देता, बात कहता हूं। तुम जैसी सुन्दरीको उन्होंने नाहक मेरे साथ ब्याहा।

शीतला—लजाते तो हो नहीं, उलटे और ताने देते हो !

विमल—भाग्य मेरे वशमें नहीं है। इतना पढ़ा भी नहीं हूं कि कोई बड़ी नौकरी करके रुपये कमाऊँ।

शीतला—यह क्यों नहीं कहते कि प्रेम ही नहीं है। प्रेम हो, तो कंचन बरसने लगे।

विमल—तुम्हें गहनोंसे बहुत प्रेम है ?

शीतला—सभीको होता है। मुझे भी है।

विमल—अपनेको अभागिनी समझती हो ?

शीतला—हूं ही, समझना कैसा ? नहीं तो क्या दूसरे-को देखकर तरसना पड़ता ?

विमल—गहने बनवा दूं, तो अपनेको भाग्यवती समझने लगोगी ?

शीतला—(चिढ़कर) तुम तो इस तरह पूछ रहे हो, जैसे सुनार दरवाजेपर बैठा है।

विमल—नहीं, सच कहता हूं, बनवा दूंगा। हां, कुछ दिन सबर करना पड़ेगा।

(२)

समर्थ पुरुषोंको बात लग जाती है, तो वे प्राण ले लेते हैं। सामर्थ्य-हीन पुरुष अपनी ही जानपर खेल जाता है। विमलसिंहने घरसे निकल जानेकी ठानी। निश्चय किया, या तो इसे गहनोंसे ही लाद दूंगा या वैधव्य-शोकसे; या तो आभूषण ही पहनेगी या सेन्दुरको भी तरसेगी।

दिन-भर वह चिन्तामें डूबा पड़ा रहा। शीतलाको उसने प्रेमसे संतुष्ट करना चाहा था। आज अनुभव हुआ कि नारीका हृदय प्रेम-पाशसे नहीं बंधता, कंचनके पाश हीसे बँध सकता है। पहर रात जाते–जाते वह घरसे चल खड़ा हुआ। पीछे फिरकर भी न देखा। ज्ञानसे जागे हुए विराग-में चाहे मोहका संस्कार हो, पर नैराश्यसे जागा हुआ विराग अचल होता है। प्रकाशमें इधर-उधरकी वस्तुओंको देखकर मन विचलित हो सकता है। पर अंधकारमें किस-का साहस है, जो लीकसे जौ-भर भी हट सके।

नवजीवन

विमलके पास विद्या न थी, कला-कौशल भी न था उसे केवल अपने कठिन परिश्रम और कठिन आत्मत्याग ही का आधार था। वह पहले कलकत्ते गया। वहां कुछ दिन तक एक सेठकी दरबानी करता रहा। वहां जो सुन पाया कि रंगूनमें मजदूरी अच्छी मिलती है, तो रंगून जा पहुंचा, और बन्दरपर माल चढ़ाने-उतारनेका काम करने लगा।

कुछ तो कठिन श्रम, कुछ खाने-पीनेके असंयम और कुछ जल-वायुकी खराबीके कारण वह बीमार हो गया। शरीर दुर्बल हो गया, मुखकी कांति जाती रही; फिर भी उससे ज्यादा मेहनती मजदूर बंदरपर दूसरा न था। और मजदूर मजदूर थे, पर यह मजदूर तपस्वी था। मनमें जो कुछ ठान लिया था, उसे पूरा करना ही उसके जीवनका एक-मात्र उद्देश्य था।

उसने घरको अपना कोई समाचार न भेजा। अपने मन-से तर्क किया, घरमें कौन मेरा हितू है? गहनोंके सामने मुझे कौन पूछता है? उसकी बुद्धि यह रहस्य समझनेमें असमर्थ थी कि आभूषणोंकी लालसा रहनेपर भी प्रणयका पालन किया जा सकता है! और मजदूर प्रातःकाल सेरों मिठाई खाकर जल-पान करते; दिन-भर—दम-दम पर

गांजे, चरस और तमाखूके दम लगाते; अवकाश पाते, तो बाजारकी सैर करते। कितनों ही को शराबका भी शौक था। पैसोंके बदले रुपए कमाते, तो पैसोंकी जगह रुपये खर्च भी कर डालते थे। किसीकी देहपर साबित कपड़ेतक न थे। पर विमल उन गिनतीके दो-चार मजदूरोंमेंसे था, जो संयमसे रहते थे, जिनके जीवनका उद्देश्य खा-पीकर मर जानेके सिवा कुछ और भी था। थोड़े ही दिनों-में उसके पास थोड़ी-सी संपत्ति हो गई। धनके साथ और मजदूरोंपर दबाव भी बढ़ने लगा। यह प्रायः सभी जानते थे कि विमल जातिका कुलीन ठाकुर है। सब ठाकुर ही कहकर उसे पुकारते। संयम और आचार सम्मान सिद्धिके मंत्र हैं। विमल मजदूरोंका नेता और महाजन हो गया।

विमलको रंगूनमें काम करते तीन वर्ष हो चुके थे। संध्या हो गई थी। वह कई मजदूरोंके साथ समुद्रके किनारे बैठा बातें कर रहा था।

एक मजदूरने कहा—यहांकी सभी स्त्रियां निठुर होती हैं। बेचारा झींगुर १० बरससे उस बर्मी स्त्रीके साथ रहता था। कोई अपनी ब्याही जोरूसे भी इतना प्रेम न करता होगा। उसपर इतना विश्वास करता था कि जो कुछ

कमाता, उसके हाथमें रख देता। तीन लड़के थे। अभी कलतक दोनों साथ-साथ खाकर लेटे थे न कोई लड़ाई, न झगड़ा; न बात न चीत; रातको औरत न जाने कब उठी और न जाने कहां चली गई। लड़कोंको छोड़ गई। बेचारा झींगुर बैठा रो रहा है। सबसे बड़ी मुश्किल तो छोटे बच्चे की है। अभी कुल छः महीनेका है। कैसे जिएगा, भगवान ही जानें।

विमलसिंहने गम्भीर भावसे कहा—गहने बनवाता था कि नहीं?

मज़दूर—रुपये-पैसे तो औरत हीके हाथमें थे। गहने बनवाती, तो उसका हाथ कौन पकड़ता?

दूसरे मजदूरने कहा—गहनोंसे तो लदी हुई थी। जिधर-से निकल जाती थी, छम-छमकी आवाजसे कान भर जाते थे।

विमल—जब गहने बनवानेपर भी निठुराई की, तो यही कहना पड़ेगा कि यह जाति ही बेवफा होती है।

इतनेमें एक आदमी आकर विमलसिंहसे बोला—चौधरी. अभी मुझे एक सिपाही मिला था। वह तुम्हारा नाम, गांव और बापका नाम पूछ रहा था। कोई बाबू सुरेशसिंह हैं?

विमलने सशङ्क होकर कहा—हां, हैं। मेरे गांवके इलाके-दार और बिरादर के भाई हैं।

आदमी—उन्होंने थानेमें कोई नोटिस छपवाया है कि जो विमलसिंहका पता लगावेगा, उसे १,०००) का इनाम मिलेगा।

विमल—तो तुमने सिपाहीको ठीक-ठीक बता दिया?

आदमी—चौधरी, मैं कोई गँवार हूं क्या? समझ गया, कुछ दालमें काला है; नहीं तो कोई इतने रुपये क्यों खर्च करता। मैंने कह दिया कि उनका नाम विमलसिंह नहीं, जसोदापांड़े है। बापका नाम सुक्खू बताया, और घर जिला झांसीमें। पूछने लगा, यहां कितने दिनसे रहता है? मैंने कहा, कोई दस सालसे। तब कुछ सोचकर चला गया। सुरेश बाबूसे तुमसे कोई अदावत है क्या, चौधरी?

विमल—अदावत तो नहीं थी, मगर कौन जाने, उनकी नीयत बगड़ गई हो। मुझपर कोई अपराध लगाकर मेरी जगह-ज़मीनपर हाथ बढ़ाना चाहते हों। तुमने बड़ा अच्छा किया कि सिपाहीको उड़नघाई बताई।

आदमी—मुझसे कहता था कि ठीक-ठीक बता दो, तो ५०) तुम्हें भी दिला दूँ। मैंने सोचा—आप तो १,०००) की

गठरी मारेगा, और मुझे ५०) दिलानेको कहता है। फटकार बता दी।

एक मज़दूर—मगर जो २००) देनेको कहता, तो तुम सब ठीक-ठीक नाम-ठिकाना बता देते? क्यों? धत् तेरे लालची की!

आदमी—(लज्जित होकर) २००) नहीं, २,०००) भी देता, तो न बताता। मुझे ऐसा विश्वासघात करनेवाला मत समझो। जब जी चाहे, परख लो।

मज़दूरोंमें यों वाद-विवाद होता ही रहा, विमल आकर अपनी कोठरीमें लेट गया। वह सोचने लगा—अब क्या करूँ? जब सुरेश-जैसे सज्जनकी नीयत बदल गई, तो अब किसका भरोसा करूँ! नहीं, अब बिना घर गए काम नहीं चलेगा। कुछ दिन और न गया, तो फिर कहींका न होऊँगा। दो साल और रह जाता, तो पासमें पूरे ५,०००) हो जाते। शीतलाकी इच्छा कुछ पूरी हो जाती। अभी तो सब मिलाकर ३,०००) ही होंगे, इतनेमें उसकी अभिलाषा न पूरी होगी। खैर, अभी चलूँ। छः महीनेमें फिर लौट आऊँगा। अपनी जायदाद तो बच जायगी। नहीं, छः महीने रहनेका क्या काम है? जाने-आनेमें एक महीना लग

जायगा। घरमें १५ दिनसे ज्यादा न रहूंगा। वहां कौन पूछता है, आऊँ या हूँ, मरूँ या जिऊँ; वहां तो गहनोंसे प्रेम है।

इस तरह मनमें निश्चय करके वह दूसरे दिन रंगूनसे चल पड़ा।

(३)

संसार कहता है, गुणके सामने रूपकी कोई हस्ती नहीं। हमारे नीति-शास्त्रके आचार्यों का भी यही कथन है। पर वास्तवमें यह कितना भ्रम-मूलक है! कुँअर सुरेशसिंहकी नववधू मंगलाकुमारी गृह-कार्यमें निपुण, पतिके इशारेपर प्राण देनेवाली, अत्यन्त विचारशीला, मधुर-भाषिणी और धर्म भीरु थी; पर सौंदर्य-विहीन होनेके कारण पतिकी आंखोंमें कांटेके समान खटकती थी। सुरेशसिंह बात बात-पर उसपर झुँझलाते, पर घड़ी-भरमें पश्चात्तापके वशीभूत होकर उससे क्षमा मांगते; किन्तु दूसरे ही दिन फिर वही कुत्सित व्यापार शुरू हो जाता। विपत्ति यह थी कि उनके आचरण अन्य रईसोंकी भांति भ्रष्ट न थे। वह दांपत्य जीवन हीमें आनन्द, सुख, शान्ति, विश्वास, प्रायः सभी ऐहिक और पारमार्थिक उद्देश्य पूरा करना चाहते थे, और

दांपत्य सुखसे वंचित होकर उन्हें अपना समस्त जीवन नीरस, स्वाद-हीन और कुंठित जान पड़ता था। फल यह हुआ कि मङ्गलाको अपने ऊपर विश्वास न रहा। वह अपने मनसे कोई काम करते हुए डरती कि स्वामी नाराज होंगे। स्वामीको खुश रखनेके लिये अपनी भूलोंको छिपाती, बहाने करती, झूठ बोलती। नौकरोंको अपराध लगाकर आत्म-रक्षा करना चाहती। पतिको प्रसन्न रखनेके लिये उसने अपने गुणोंकी, अपनी आत्माकी अवहेला की; पर उठनेके बदले वह पतिकी नजरोंसे गिरती ही गई। वह नित्य नए शृङ्गार करती, पर लक्ष्यसे दूर होती जाती। पतिकी एक मधुर मुसकानके लिये, उनके अधरोंके एक मीठे शब्दके लिये, उसका प्यासा हृदय तड़प-तड़पकर रह जाता। लावण्य-विहीन स्त्री वह भिक्षुक नहीं है, जो चंगुल-भर आटेसे सन्तुष्ट हो जाय। वह भी पतिका संपूर्ण, अखंड प्रेम चाहती है, और कदाचित् सुन्दरियोंसे अधिक; क्योंकि वह इसके लिये असाधारण प्रयत्न और अनुष्ठान करती है। मंगला इस प्रयत्नमें निष्फल होकर और भी संतप्त होती थी।

धीरे-धीरे पतिपरसे उसकी श्रद्धा उठने लगी। उसने

तर्क किया कि ऐसे क्रूर, हृदय-शून्य कल्पना-हीन मनुष्यसे मैं भी उसीका-सा व्यवहार करूंगी। जो पुरुष केवल रूप-का भक्त है, वह प्रेम-भक्तिके योग्य नहीं। इस प्रत्याघातने समस्या और भी जटिल कर दी।

मगर मंगलाको केवल अपनी रूप-हीनता हीका रोना न था, शीतलाका अनुपम रूप-लालित्य भी उसकी काम-नाओंका बाधक था, बल्कि यही उसकी आशा-लताओंपर पड़नेवाला तुषार था। मंगला सुन्दरी न सही, पर पतिपर जान देती थी। जो अपनेको चाहे, उससे हम विमुख नहीं हो सकते ; प्रेमकी शक्ति अपार है। पर शीतलाकी मूर्ति सुरेशके हृदय-द्वारपर बैठी हुई मंगलाको अन्दर न जाने देती थी, चाहे वह कितना ही वेष बदलकर आवे। सुरेश इस मूर्तिको हटानेकी चेष्टा करते थे, उसे बलात् निकाल देना चाहते थे ; किन्तु सौंदर्यका आधिपत्य धनके आधि-पत्यसे कम दुर्निवार नहीं होता। जिस दिन शीतला इस घरमें मंगलाका मुँह देखने आई थी, उसी दिन सुरेशकी आंखोंने उसकी मनोहर छविकी एक झलक देख ली थी। वह एक झलक मानो एक क्षणिक क्रिया थी, जिसने एक ही धावेमें समस्त हृदय-राज्यको जीत लिया—उसपर अपना आधिपत्य जमा लिया।

नवजीवन

सुरेश एकान्तमें बैठे हुए शीतलाके चित्रको मंगलासे मिलाते, यह निश्चय करनेके लिये कि उनमें अन्तर क्या है? एक क्यों मनको खींचती है, दूसरी क्यों उसे हटाती है? पर उनके मनका यह खिंचाव केवल एक चित्रकार या कविका रसास्वादन-मात्र था। वह पवित्र और वासनाओंसे रहित था। वह मूर्ति केवल उनके मनोरंजनकी सामग्री-मात्र थी। वह अपने मनको बहुत समझाते, संकल्प करते कि अब मंगलाको प्रसन्न रक्खूंगा। यदि वह सुन्दरी नहीं है, तो उसका क्या दोष? पर उनका यह सब प्रयास मंगलाके सम्मुख जाते ही विफल हो जाता था। वह बड़ी सूक्ष्म दृष्टिसे मंगलाके मनके बदलते हुए भावोंको देखते; पर एक पक्षाघात-पीड़ित मनुष्यकी भांति घीके घड़ेको लुढ़कते देखकर भी रोकनेका कोई उपाय न कर सकते। परिणाम क्या होगा, यह सोचनेका उन्हें साहस ही न होता। पर जब मंगलाने अंतको बात-बातमें उनकी तीव्र आलोचना करना शुरू कर दिया, वह उनसे उच्छृंखलताका व्यवहार करने लगी, तब उसके प्रति उनका वह उतना सौहार्द भी विलुप्त हो गया। घरमें आना-जाना ही छोड़ दिया।

आभूषण

एक दिन संध्याके समय बड़ी गरमी थी। पंखा झलनेसे आग और भी दहकती थी। कोई सैर करने बगीचोंमें भी न जा सकता था। पसीनेकी भांति शरीरसे सारी स्फूर्ति बह गई थी। जो जहां था, वहीं मुर्दा-सा पड़ा था। आगसे सेंके हुए मृदंगकी भाँति लोगोंके स्वर कर्कश हो गए थे। साधारण बातचीतमें भी लोग उत्तेजित हो जाते, जैसे साधारण संघर्षसे वनके वृक्ष जल उठते हैं। सुरेशसिंह कभी चार कदम टहलते, फिर हाँफकर बैठ जाते। नौकरोंपर झुँझला रहे थे कि जल्द-जल्द छिड़काव क्यों नहीं करते? सहसा उन्हें अंदरसे गानेकी आवाज़ सुनाई दी। चौंके, फिर क्रोध आया। मधुर गान कानोंको अप्रिय जान पड़ा। यह क्या बेवक्तकी शहनाई है! यहां गरमीके मारे दम निकल रहा है, और इन सबको गानेकी सूझी है! मङ्गलाने बुलाया होगा, और क्या! लोग नाहक कहते हैं कि स्त्रियोंके जीवनका आधार प्रेम है। उनके जीवनका आधार वही भोजन, निद्रा, राग-रंग, आमोद-प्रमोद है, जो समस्त प्राणियोंका है। घंटे-भर तो सुन चुका। यह गीत कभी बन्द भी होगा या नहीं; सब व्यर्थमें गला फाड़-फाड़ कर चिल्ला रही हैं।

अंतको न रहा गया। जनानखानेमें आकर बोले—"यह तुम लोगोंने क्या काँव-काँव मचा रक्खी है? यह गाने-बजानेका कौन-सा समय है? बाहर बैठना मुश्किल हो गया!"

सन्नाटा छा गया, जैसे शोर-गुल मचानेवाले बालकोंमें मास्टर पहुंच जाय! सभीने सिर झुका लिए, और सिमट गईं।

मङ्गला तुरन्त उठकर सामनेवाले कमरेमें चली गई। पतिको बुलाया, और आहिस्तेसे बोली—क्यों इतना बिगड़ रहे हो?

"मैं इस वक्त गाना नहीं सुनना चाहता।"

"तुम्हें सुनाता ही कौन है? क्या मेरे कानोंपर भी तुम्हारा अधिकार है?"

"फ़ुज़ूलकी बमचख़—"

"तुमसे मतलब?"

"मैं अपने घरमें यह कोलाहल न मचने दूँगा!"

"तो मेरा घर कहीं और है?"

सुरेशसिंह इसका उत्तर न देकर बोले—इन सबसे कह दो, फिर किसी वक्त आवें।

मंगला—इसलिये कि तुम्हें इनका आना अच्छा नहीं लगता ?

"हां, इसीलिये !"

"तुम क्या सदा वही करते हो, जो मुझे अच्छा लगे ? तुम्हारे यहां मित्र आते हैं, हँसी-ठट्ठेकी आवाज अन्दर सुनाई देती है। मैं कभी नहीं कहती कि इन लोगोंका आना बन्द कर दो। तुम मेरे कामोंमें दस्तंदाजी क्यों करते हो ?"

सुरेशने तेज होकर कहा—इसलिये कि मैं घरका स्वामी हूं।

मंगला—तुम बाहरके स्वामी हो ; यहां मेरा अधि-कार है।

सुरेश—क्यों व्यर्थकी बक-बक करती हो ? मुझे चिढ़ानेसे क्या मिलेगा ?

मंगला जरा देर चुपचाप खड़ी रही। वह पतिके मनो-गत भावोंकी मीमांसा कर रही थी। फिर बोली—अच्छी बात है। अब इस घरमें मेरा कोई अधिकार नहीं, तो न रहूंगी। अबतक भ्रममें थी। आज तुमने वह भ्रम मिटा दिया। मेरा इस घरपर अधिकार कभी नहीं था। जिस

स्त्रीका पतिके हृदयपर अधिकार नहीं, उसका उसकी संपत्तिपर भी कोई अधिकार नहीं हो सकता।

सुरेशने लज्जित होकर कहा—बातका बतंगड़ क्यों बनाती हो! मेरा यह मतलब न था। कुछ-का-कुछ समझ गईं!

मंगला—मनकी बात आदमीके मुंहसे अनायास ही निकल जाती है। फिर सावधान होकर हम अपने भावोंको छिपा लेते हैं।

सुरेशको अपनी असज्जनतापर दुःख तो हुआ, पर इस भयसे कि मैं इसे जितना ही मनाऊंगा, उतना ही यह और जली-कटी सुनावेगी, उसे वहीं छोड़कर बाहर चले आए।

प्रातःकाल ठंडी हवा चल रही थी। सुरेश खुमारीमें पड़े हुए स्वप्न देख रहे थे कि मंगला सामनेसे चली जा रही है। चौंक पड़े। देखा, द्वारपर सचमुच मंगला खड़ी है। घरकी नौकरानियां आंचलसे आंखें पोछ रही हैं। कई नौकर आस-पास खड़े हैं। सभीको आंखें सजल और मुख उदास हैं। मानो बहू बिदा हो रही है।

सुरेश समझ गये कि मंगलाको कलकी बात लग गई।

पर उन्होंने उठकर कुछ पूछनेकी, मनानेकी या समझानेकी चेष्टा न की। यह मेरा अपमान कर रही है, सिर नीचा कर रही है। जहां चाहे, जाय। मुझसे कोई मतलब नहीं। यों बिना कुछ पूछे-पाछे चले जानेका अर्थ यह है कि मैं इसका कोई नहीं। फिर मैं इसे रोकनेवाला कौन !

वह यों ही जड़वत् पड़े रहे, और मंगला चली गई। उनकी तरफ मुँह उठाकर भी न ताका।

(४)

मंगला पांव-पैदल चली जा रही थी। एक बड़े ताल्लुकेदारकी औरतके लिये यह मामूली बात न थी। हर किसीकी हिम्मत न पड़ती कि उससे कुछ कहे। पुरुष उसकी राह छोड़कर किनारे हो जाते थे। नारियाँ द्वारपर खड़ी करुण कौतूहलसे देखती थीं, और आँखोंसे कहती थीं—हा निर्दयी पुरुष ! इतना भी न हो सका कि डोलेपर तो बैठा देता।

इस गाँवसे निकलकर मंगला उस गाँवमें पहुंची, जहां शीतला रहती थी। शीतला सुनते ही द्वारपर आकर खड़ी हो गई, और मंगलासे बोली—बहन, ज़रा आकर दम ले लो।

नवजीवन

मङ्गलाने अंदर जाकर देखा, तो मकान जगह-जगहसे गिरा हुआ था। दालानमें एक वृद्धा खाटपर पड़ी थी। चारों ओर दरिद्रताके चिह्न दिखाई देते थे।

शीतलाने पूछा—यह क्या हुआ?

मङ्गला—जो भाग्यमें लिखा था।

शीतला – कुँअरजीने कुछ कहा-सुना क्या?

मङ्गला—मुँहसे कुछ न कहनेपर भी तो मनकी बात छिपी नहीं रहती।

शीतला—अरे, तो क्या अब यहांतक नौबत आ गई!

दुःखकी अंतिम दशा संकोच-हीन होती है। मंगलाने कहा—चाहती, तो अब भी पड़ी रहती। उसी घरमें जीवन कट जाता। पर जहां प्रेम नहीं, पूछ नहीं, मान नहीं, वहां अब नहीं रह सकती।

शीतला—तुम्हारा मायका कहाँ है?

मंगला—मायके कौन मुँह लेकर जाऊँगी?

शीतला—तब कहाँ जाओगी?

मंगला—ईश्वरके दरबारमें। पूछूँगी, तुमने मुझे सुन्दरता क्यों नहीं दी? बदसूरत क्यों बनाया? बहन, स्त्री-के लिये इससे अधिक दुर्भाग्यकी बात नहीं कि वह रूप-हीना

हो। शायद पुरबले जनमकी पिशाचिनियाँ ही बदसूरत औरतें होती हैं। रूपसे प्रेम मिलता है, और प्रेमसे दुर्लभ कोई वस्तु नहीं।

यह कहकर मंगला उठ खड़ी हुई। शीतलाने उसे रोका नहीं। सोचा—इसे खिलाऊँगी क्या, आज तो चूल्हा जलने की कोई आशा नहीं।

उसके जानेके बाद वह बहुत देरतक बैठी सोचती रही—मैं कैसी अभागिन हूं। जिस प्रेमको न पाकर यह बेचारी जीवनको त्याग रही है, उसी प्रेमको मैंने पाँवसे ठुकरा दिया! इसे जेवरकी क्या कमी था? क्या ये सारे जड़ाऊ जेवर इसे सुखी रख सके? इसने उन्हें पाँवसे ठुकरा दिया। उन्हीं आभूषणोंके लिये मैंने अपना सर्वस्व खो दिया। हा! न जाने वह (विमलसिंह) कहाँ हैं, किस दशामें हैं!

अपनी लालसाको, तृष्णाको, वह कितनी ही बार धिक्कार चुकी थी। शीतलाकी दशा देखकर आज उसे आभूषणोंसे घृणा हो गई।

विमलको घर छोड़े दो साल हो गए थे। शीतलाको अब उनके बारेमें भाँति-भाँतिकी शंकाएँ होने लगीं। आठो पहर उसके चित्तमें ग्लानि और क्षोभकी आग सुलगती।

नवजीवन

दिहातके छोटे-मोटे ज़मींदारोंका काम डाँट-डपट, छीन-झपट हीसे चला करता है। विमलकी खेती बेगारमें होती थी। उसके जानेके बाद सारे खेत परती रह गए। कोई जोतनेवाला न मिला। इस ख्यालसे साझेपर भी किसीने न जोता कि बीचमें कहीं विमलसिंह आ गए, तो साझेदार-को अँगूठा दिखा देंगे। असामियोंने लगान न दिया। शीतलाने महाजनसे रुपये उधार लेकर काम चलाया। दूसरे वर्ष भी यही कैफियत रही। अबकी महाजनने भी रुपये न दिये। शीतलाके गहनोंके सिर गई। दूसरा साल समाप्त होते-होते घरकी सब लेई पूंजी निकल गई। फाके होने लगे। बूढ़ी सास, छोटा देवर, ननँद और आप चार प्राणियोंका खर्च था। नात-हित भी आते ही रहते थे। उसपर यह और मुसीबत हुई कि मायकेमें एक फौजदारी हो गई। पिता और बड़े भाई उसमें फंस गए। दो छोटे भाई, एक बहन और माता, चार प्राणी और सिरपर आ डटे। गाड़ी पहले ही मुश्किलसे चलती थी, अब जमीनमें धँस गई।

प्रातःकालसे कलहका आरम्भ हो जाता। समधिन समधिनसे, साले बहनोईसे गुथ जाते। कभी तो अन्नके

अभावसे भोजन ही न बनता; कभी भोजन बननेपर भी, गाली-गलौजके कारण खानेकी नौबत न आती। लड़के दूसरोंके खेतोंमें जाकर गन्ने और मटर खाते; बूढ़ियाँ दूसरोंके घर जाकर अपना दुखड़ा रोतीं और ठकुर-सोहाती कहती। पुरुषकी अनुपस्थितिमें स्त्रीके मायकेवालोंका प्राधान्य हो जाता है। इस संग्राममें प्रायः विजय-पताका मायकेवालोंके ही हाथ रहती है। किसी भाँति घरमें नाज आ जाता, तो उसे पीसे कौन! शीतलाकी मा कहती, चार दिनके लिये आई हूं, तो क्या चक्की चलाऊँ? सास कहती, खानेकी बेर तो बिल्लीकी तरह लपकेंगी, पीसते क्यों जान निकलती है? विवश होकर शीतलाको अकेले पीसना पड़ता। भोजनके समय वह महाभारत मचता कि पड़ोसवाले तंग आ जाते! शीतला कभी माके पैरों पड़ती, कभी सासके चरण पकड़ती; लेकिन दोनों ही उसे झिड़क देतीं। मा कहती, तूने यहां बुलाकर हमारा पानी उतार लिया। सास कहती, मेरी छातीपर सौत लाकर बैठा दी, अब बातें बनाती है? इस घोर विवादमें शीतला अपना विरह-शोक भूल गई। सारी अमंगल-शंकाएँ इस विरो-धाग्निमें शान्त हो गईं। बस, अब यही चिन्ता थी कि इस

दशासे छुटकारा कैसे हो ? मा और सास, दोनोंहीका यम-
राजके सिवा और कहीं ठिकाना न था; पर यमराज उन-
का स्वागत करनेके लिये बहुत उत्सुक नहीं जान पड़ते थे।
सैकड़ों उपाय सोचती, पर उस पथिककी भांति, जो दिन-
भर चलकर भी अपने द्वार ही पर खड़ा हो, उसकी सोचने-
की शक्ति निश्चल हो गई थी। चारों तरफ निगाहें दौड़ाती
कि कहीं कोई शरणका स्थान है ? पर कहीं निगाह न
जमती।

एक दिन वह इसी नैराश्यकी अवस्थामें द्वारपर खड़ी
थी। मुसीबतमें, चित्तकी उद्विग्नतामें, इन्तजारमें, द्वारसे
प्रेम-सा हो जाता है। सहसा उसने बाबू सुरेशसिंहको
सामनेसे घोड़ेपर जाते देखा। उनकी आँखें उसकी ओर
फिरीं। आंखें मिल गईं। वह झिझककर पीछे हट गई।
किवाड़े बंद कर लिए। कुँअर साहब आगे बढ़ गए।
शीतलाको खेद हुआ कि उन्होंने मुझे देख लिया। मेरे सिर-
पर सारी फटी हुई थी, चारों तरफ़ उसमें पेबन्द लगे हुए
थे! वह अपने मनमें न-जाने क्या कहते होंगे ?

कुँअर साहबको गांववालोंसे विमलसिंहके परिवारके
कष्टोंकी खबर मिली थी। वह गुप्त रूपसे उसकी कुछ सहा-

यता करना चाहते थे। पर शीतलाको देखते ही संकोचने उन्हें ऐसा दबाया कि द्वारपर एक क्षण भी न रुक सके। मंगलाके गृह-त्यागके तीन महीने पीछे आज वह पहली बार घरसे निकले थे। मारे शर्मके बाहर बैठना छोड़ दिया था।

इसमें संदेह नहीं कि कुँअर साहब मनमें शीतलाके रूप-रसका आस्वादन करते थे। मंगलाके जानेके बाद उनके हृदयमें एक विचित्र दुष्कामना जग उठी। क्या किसी उपायसे यह सुन्दरी मेरी नहीं हो सकती? विमलका मुद्दत-से पता नहीं। बहुत संभव है, वह अब संसारमें न हो। किंतु वह इस दुष्कल्पनाको विचारसे दबाते रहते थे। शीतलाकी विपत्तिकी कथा सुनकर भी वह उसकी सहायता करते डरते थे। कौन जाने, वासना यही वेष रखकर मेरे विचार और विवेकपर कुठाराघात न करना चाहती हो। अंतको लालसाकी कपट-लीला उन्हें भुलावा देही गई। वह शीलताके घर उसका हाल-चाल पूछने गए। मनमें तर्क किया—यह कितना घोर अन्याय है कि एक अबला ऐसे संकटमें हो, और मैं उसकी बात भी न पूछूँ? पर वहांसे लौटे, तो बुद्धि और विवेककी रस्सियाँ टूट गई थीं,

नौका मोह और वासनाके अपार सागरमें डुबकियाँ खा रही थी। आह! यह मनोहर छवि! यह अनुपम सौंदर्य!

एक क्षणमें उन्मत्तोंकी भाँति बकने लगे—यह प्राण और यह शरीर तेरी भेंट करता हूं। संसार हँसेगा, हँसे। महापाप है, हो। कोई चिन्ता नहीं। इस स्वर्गीय आनन्दसे मैं अपनेको वंचित नहीं रख सकता? वह मुझसे भाग नहीं सकती। इस हृदयको छातीसे निकालकर उसके पैरोंपर रख दूँगा। विमल? मर गया। नहीं मरा, तो अब मरेगा। पाप क्या है? कोई बात नहीं। कमल कितना कोमल, कितना प्रफुल्ल, कितना ललित है! क्या उसके अधरों—

अकस्मात् वह ठिठक गए, जैसे कोई भूली हुई बात याद आ जाय। मनुष्यमें बुद्धिके अन्तर्गत एक अज्ञात बुद्धि होती है। जैसे रणक्षेत्रमें हिम्मत हारकर भागनेवाले सैनिकों-को किसी गुप्त स्थानसे आनेवाली कुमक सँभाल लेती है, वैसे ही इस अज्ञात बुद्धिने सुरेशको सचेत कर दिया। वह सँभल गए। ग्लानिसे उनकी आंखें भर आईं। वह कई मिनट तक किसी दंडित कैदीकी भांति क्षुब्ध खड़े सोचते रहे। फिर विजय-ध्वनिसे कह उठे—कितना सरल है। इस विकार-के हाथीको सिंहसे नहीं, चिऊंटीसे मारूंगा। शीतलाको एक

बार "बहन" कह देनेसे ही यह सब विकार शान्त हो जायगा। शीतला! बहन! मैं तेरा भाई हूं!

उसी क्षण उन्होंने शीतलाको पत्र लिखा—बहन, तुमने इतने कष्ट झेले; पर मुझे खबरतक न दी! में कोई गैर न था। मुझे इसका दुःख है। खैर, अब ईश्वरने चाहा, तो तुम्हें कष्ट न होगा।

इस पत्रके साथ उन्होंने नाज और रुपये भेजे।

शीतलाने उत्तर दिया—भैया, क्षमा करो। जबतक जीऊंगी, तुम्हारा यश गाऊंगी, तुमने मेरी डूबती नाव पार लगा दी।

(५)

कई महीने बीत गये। संध्याका समय था। शीतला अपनी मैनाको चारा चुगा रही थी। उसे सुरेश नैपालसे उसीके वास्ते लाए थे। इतनेमें सुरेश आकर आंगनमें बैठ गए।

शीतलाने पूछा—"कहांसे आते हो, भैया?"

सुरेश—गया था जरा थाने। कुछ पता नहीं चला। रंगूनमें पहले कुछ पता मिला था। बादको मालूम हुआ कि वह कोई और आदमी है। क्या करूँ? इनाम और बढ़ा दूं?

शीतला—तुम्हारे पास रुपये बढ़े हैं, फूँको। उनकी इच्छा होगी, तो आप ही आवेंगे।

सुरेश—एक बात पूंछूं, बताओगी? किस बातपर तुमसे रूठे थे।

शीतला—कुछ नहीं, मैंने यही कहा कि मुझे गहने बनवा दो। कहने लगे, मेरे पास है क्या। मैंने कहा (लजाकर), तो ब्याह क्यों किया? बस बातों-ही-बातोंमें तकरार मान गये।

इतनेमें शीतलाकी सास आ गई। सुरेशने शीतलाकी मा और भाइयोंको उनके घर पहुंचा दिया था, इसलिये यहां अब शांति थी। सासने बहूकी बात सुन ली थी। कर्कश स्वरसे बोली—बेटा, तुमसे क्या परदा है। यह महारानी देखने हीको गुलाबका फूल हैं, अन्दर सब काँटे हैं। यह अपने बनावसिंगारके आगे विमलकी बात ही न पूछती थी। बेचारा इसपर जान देता था; पर इसका मुँह ही न सीधा होता था। प्रेम तो इसे छू नहीं गया। अन्तको उसे देशसे निकाल कर इसने दम लिया!

शीतलाने रुष्ट होकर कहा—क्या वही अनोखे धन कमाने घरसे निकले हैं? देश-विदेश जाना मरदोंका काम ही है।

आभूषण

सुरेश—योरपमें तो धन-भोगके सिवा स्त्री-पुरुषमें कोई सम्बन्ध ही नहीं होता। बहनने योरपमें जन्म लिया होता, तो हीरे-जवाहिरसे जगमगाती होतीं। शीतला, अब तुम ईश्वरसे यही कहना कि सुन्दरता देते हो, तो योरपमें जन्म दो।

शीतलाने व्यथित होकर कहा—"जिनके भाग्यमें लिखा है, वे यहीं सोनेसे लदी हुई हैं। मेरी भाँति सभीके करम थोड़े ही फूट गये है।"

सुरेशसिंहको ऐसा जान पड़ा कि शीतलाकी मुख-कांति मलिन हो गई है। पति-वियोगमें भी गहनोंके लिये इतनी लालायित है! बोले—"अच्छा, मैं तुम्हें गहने बनवा दूंगा।"

यह वाक्य कुछ अपमान-सूचक स्वरमें कहा गया था; पर शीतलाकी आँखें आनन्दसे सजल हो आईं, कंठ गद्गद् हो गया। उसके हृदय-नेत्रोंके सामने मंगलाके रत्न-जटित आभूषणोंका चित्र खिंच गया। उसने कृतज्ञता-पूर्ण दृष्टिसे सुरेशको देखा। मुँहसे कुछ न बोली; पर उसका प्रत्येक अंग कह रहा था—"मैं तुम्हारी हूं!"

—०—

(६)

कोयल आमकी डालियोंपर बैठकर, मछली शीतल निर्मल जलमें क्रीड़ा करके और मृग-शावक विस्तृत हरि-यालियोंमें छलांगें भरकर इतने प्रसन्न नहीं होते, जितना मंगलाके आभूषणोंको पहनकर शीतला प्रसन्न हो रही है। उसके पैर जमीनपर नहीं पड़ते। वह आकाशमें विचरती हुई जान पड़ती है। वह दिन-भर आइनेके सामने खड़ी रहती है; कभी केशोंको सँवारती है, कभी सुरमा लगाती है। कुहरा फट गया और निर्मल स्वच्छ चाँदनी निकल आई है। वह घरका एक तिनका भी नहीं उठाती। उसके स्वभावमें एक विचित्र गर्वका संचार हो गया है।

लेकिन श्रृङ्गार क्या है? सोई हुई काम-वासनाको जगानेका घोर नाद्—उद्दीपनका मंत्र। शीतला जब नख-शिखसे सजकर बैठती है, तो उसे प्रबल इच्छा होती है कि मुझे कोई देखे। वह द्वारपर आकर खड़ी हो जाती है। गाँवकी स्त्रियोंकी प्रशंसासे उसे संतोष नहीं होता। गाँवके पुरुषोंको वह श्रृङ्गार-रस-विहीन समझती है। इसलिये सुरेशसिंहको बुलाती है। पहले वह दिनमें एक बार आ जाते थे; अब शीतलाके बहुत अनुनय-विनय करनेपर भी नहीं आते।

आभूषण

पहर रात गई थी। घरोंके दीपक बुझ चुके थे। शीतलाके घरमें दीपक जल रहा था। उसने कुँअर साहबके बगीचेसे बेलेके फूल मँगवाए थे, और बैठी हार गूँथ रही थी—अपने लिये नहीं, सुरेशके लिये। प्रेमके सिवा एहसान-का बदला देनेके लिये उसके पास और था ही क्या?

एकाएक कुत्तोंके भूँकनेकी आवाज सुनाई दी, और दमभरमें विमलसिंहने मकानके अन्दर कदम रखा। उनके एक हाथमें संदूक थी, दूसरे हाथमें एक गठरी। शरीर दुर्बल, कपड़े मैले, दाढ़ीके बाल बढ़े हुए, मुख पीला; जैसे कोई कैदी जेलसे निकलकर आया हो। दीपकका प्रकाश देखकर वह शीतलाके कमरेकी तरफ चले। मैना पिंजरेमें तड़फड़ाने लगी। शीतलाने चौंककर सिर उठाया। घबरा-कर बोली—"कौन?" फिर पहचान गई। तुरंत फूलोंको एक कपड़ेसे छिपा दिया। उठ खड़ी हुई, और सिर झुका-कर पूछा—"इतनी जल्दी सुध ली!"

विमलने कुछ जवाब न दिया। विस्मित हो-होकर कभी शीतलाको देखता और कभी घरको। मानो किसी नए संसारमें पहुंच गया है। यह वह अधखिला फूल न था, जिसकी पँखड़ियां अनुकूल जल-वायु न पाकर सिमट गई

थीं। यह पूर्ण विकसित कुसुम था—ओसके जलकणोंसे जगमगाता और वायुके झोकोंसे लहराता हुआ। विमल उसकी सुन्दरतापर पहले भी मुग्ध था। पर यह ज्योति वह अग्नि-ज्वाला थी, जिससे हृदयमें ताप और आंखोंमें जलन होती थी। ये आभूषण, ये वस्त्र, यह सजावट! उसके सिरमें चक्कर-सा आ गया। ज़मीनपर बैठ गया। इस सूर्य-मुखीके सामने बैठते हुए उसे लज्जा आती थी। शीतला अभीतक स्तंभित खड़ी थी। वह पानी लाने नहीं दौड़ी, उसने पतिके चरण नहीं धोए, उसके पंखातक नहीं झला। वह हतबुद्धि-सी हो गई थी। उसने कल्पनाओंकी कैसी सुरम्य वाटिका लगाई थी! उसपर तुषार पड़ गया! वास्तवमें इस मलिन-वदन, अर्द्ध-नग्न पुरुषसे उसे घृणा हो रही थी। यह घरका ज़मींदार विमल न था। वह मज़दूर हो गया था। मोटा काम मुखाकृतिपर असर डाले बिना नहीं रहता। मज़दूर सुन्दर वस्त्रोंमें भी मज़दूर ही रहता है।

सहसा विमलकी मा चौंकी। शीतलाके कमरेमें आई, तो विमलको देखते ही मातृ-स्नेहसे विह्वल होकर उसे छातीसे लगा लिया। विमलने उसके चरणोंपर सिर रक्खा।

उसकी आँखोंसे आंसुओंकी गरम-गरम बूँदें निकल रही थीं। मा पुलकित हो रही थी। मुखसे बात न निकलती थी।

एक क्षणमें विमलने कहा—अम्मा!

कंठ-ध्वनिने उसका आशय प्रकट कर दिया।

माने प्रश्न समझकर कहा—नहीं बेटा, यह बात नहीं है।

विमल—यह देखता क्या हूं?

मा—स्वभाव ही ऐसा है, तो कोई क्या करे?

विमल—सुरेशने मेरी हुलिया क्यों लिखाया था?

मा—तुम्हारी खोज लेनेके लिये। उन्होंने दया न की होती, तो आज घरमें किसीको जीता न पाते।

विमल—बहुत अच्छा होता।

शीतलाने तानेसे कहा—अपनी ओरसे तो तुमने सबको मार ही डाला था। फूलोंकी सेज बिछा गए थे न?

विमल—अब तो फूलोंकी सेज ही बिछी हुई देखता हूं।

शीतला—तुम किसीके भाग्यके विधाता हो?

विमलसिंह उठकर क्रोधसे काँपता हुआ बोला—अम्मा, मुझे यहांसे ले चलो। मैं इस पिशाचिनीका मुँह

नहीं देखना चाहता। मेरी आंखोंमें खून उतरता चला आता है। मैंने इस कुल-कलंकिनीके लिये तीन सालतक जो कठिन तपस्या की है,उससे ईश्वर मिल जाता;पर इसे न पा सका!

यह कहकर वह कमरेसे निकल आया, और माके कमरेमें लेट रहा। माने तुरन्त उसका मुँह और हाथ-पैर धुलाए। वह चूल्हा जलाकर पूरियां पकाने लगी। साथ-साथ घरको विपत्ति-कथा भी कहती जाती थी। विमलके हृदयमें सुरेशके प्रति जो विरोधाग्नि प्रज्वलित हो रही थी, वह शान्त हो गई; लेकिन 'हृदय-दाहने रक्त-दाहका रूप धारण किया। ज़ोरका बुखार चढ़ आया। लम्बी यात्राकी थकन और कष्ट तो था ही, बरसोंके कठिन श्रम और तपके बाद यह मानसिक सन्ताप और भी दुस्सह हो गया।

सारी रात वह अचेत पड़ा रहा। मा बैठी पंखा झलती और रोती रही। दूसरे दिन भी वह बेहोश पड़ा रहा। शीतला उसके पास एक क्षणके लिये भी न आई। "इन्होंने मुझे कौन सोनेके कौर खिला दिए हैं, जो इनकी धौंस सहूं। यहां तो 'जैसे कंता घर रहे, वैसे रहे विदेस।' किसी-की फूटी कौड़ी नहीं जानती। बहुत ताव दिखाकर तो गए थे। क्या लाद लाए?"

आभूषण

संध्याके समय सुरेशको खबर मिली। तुरंत दौड़े हुए आए। आज दो महीनेके बाद उन्होंने इस घरमें क़दम रक्खा। विमलने आँखें खोलीं; पहचान गया। आँखोंसे आँसू बहने लगे। सुरेशके मुखारविन्दपर दयाकी ज्योति झलक रही थी। विमलने उनके बारेमें जो अनुचित संदेह किया था, उसके लिये वह अपनेको धिक्कार रहा था।

शीतलाने ज्योंही सुना कि सुरेशसिंह आए हैं, तुरन्त शीशेके सामने गई, केश छिटका लिए और विषादकी मूर्ति बनी हुई विमलके कमरेमें आई। कहां तो विमलकी आँखें बन्द थीं, मूर्च्छित-सा पड़ा था, कहाँ शीतलाके आते ही आँखें खुल गई। अग्निमय नेत्रोंसे उसकी ओर देखकर बोला—अभी आई है? आजके तीसरे दिन आना। कुँअर साहबसे उस दिन फिर भेंट हो जायगी।

शीतला उलटे-पाँव चली गई। सुरेशपर घड़ों पानी पड़ गया। मनमें सोचा—कितना रूप-लावण्य है, पर कितना विषाक्त! हृदयकी जगह केवल शृङ्गार-लालसा!

रोग बढ़ता ही गया। सुरेशने डाक्टर बुलवाए। पर मृत्युदेवने किसीकी न मानी। उनका हृदय पाषाण है। किसी भांति नहीं पसीजता। कोई अपना हृदय निकालकर

रख दे, आँसुओंकी नदी बहा दे ; पर उन्हें दया नहीं आती। बसे हुए घरको उजाड़ना, लहराती हुई खेतीको सुखाना उनका काम है। और, उनकी निर्दयता कितनी विनोदमय है! वह नित्य नए रूप बदलते रहते हैं। कभी दामिनी बन जाते हैं तो कभी पुष्पमाला। कभी सिंह बन जाते हैं तो कभी सियार। कभी अग्निके रूपमें दिखाई देते हैं, तो कभी जलके रूपमें।

तीसरे दिन, पिछली रातको, विमलकी मानसिक पीड़ा और हृदय-तापका अन्त हो गया। चोर दिनको कभी चोरी नहीं करता। यमके दूत प्रायः रातको ही सबकी नजर बचाकर आते हैं, और प्राणरत्नको चुरा ले जाते हैं। आकाशके फूल मुरझाए हुए थे। वृक्ष-समूह स्थिर थे ; पर शोकमें मग्न, सिर झुकाए हुए। रात शोकका बाह्य रूप है। रात मृत्युका क्रीड़ा-क्षेत्र है। उसी समय विमलके घरसे आर्त-नाद सुनाई दिया—वह नाद, जिसे सुननेके लिये मृत्युदेव विकल रहते हैं।

शीतला चौंक पड़ी, और घबराई हुई मरण-शय्याकी ओर चली। उसने मृत-देहपर निगाह डाली, और भयभीत होकर एक पग पीछे हट गयी। उसे जान पड़ा, विमलसिंह

उसकी ओर अत्यन्त तीव्र दृष्टिसे देख रहे हैं। बुझे हुए दीपकमें उसे भयङ्कर ज्योति दिखाई पड़ी। वह मारे भयके वहां ठहर न सकी। द्वारसे निकल ही रही थी कि सुरेश-सिंहसे भेंट हो गई। कातर स्वरमें बोली—"मुझे यहां डर लगता है।" उसने चाहा कि रोती हुई इनके पैरोंपर गिर पड़ूँ; पर वह अलग हट गए।

(७)

जब किसी पथिकको चलते-चलते ज्ञात होता है कि मैं रास्ता भूल गया हूं, तो वह सीधे रास्तेपर आनेके लिये बड़े वेगसे चलता है। झुँझलाता है कि मैं इतना असावधान क्यों हो गया? सुरेश भी अब शांति-मार्गपर आनेके लिये विकल हो गए। मंगलाकी स्नेहमयी सेवाएं याद आने लगीं। हृदयमें वास्तविक सौंदर्योपासनाका भाव उदय हुआ। उसमें कितना प्रेम, कितना त्याग था, कितनी क्षमा थी! उसकी अतुल पति-भक्तिको याद करके कभी-कभी वह तड़प जाते। आह! मैंने घोर अत्याचार किया। ऐसे उज्ज्वल रत्नका आदर न किया। मैं यहीं जड़वत् पड़ा रहा, और मेरे सामने ही लक्ष्मी घरसे निकल गई! मंगलाने चलते-चलते शीतलासे जो बातें कही थीं, वे उन्हें मालूम

सुन्दरी अपने रूप-हीन पुरुषको छोड़ दे, उसका अपमान करे, तो आप उसे क्या कहेंगे?"

सुरेश—(गंभीर स्वरसे) कुटिला!

साली—और ऐसे पुरुषको, जो अपनी रूप-हीन स्त्रीको त्याग दे?

सुरेश—पशु!

साली—और जो पुरुष विद्वान् हो?

सुरेश—पिशाच!

साली—(हँसकर) तो मैं भागती हूं। मुझे आपसे डर लगता है।

सुरेश—पिशाचोंका प्रायश्चित्त भी तो स्वीकार हो जाता है।

साली—शर्त यह है कि प्रायश्चित्त सच्चा हो।

सुरेश—यह तो अंतर्यामी ही जान सकते हैं।

साली—सच्चा होगा, तो उसका फल भी अवश्य मिलेगा। मगर दीदीको लेकर इधरहीसे लौटियेगा।

सुरेशकी आशा-नौका फिर डगमगाई। गिड़गिड़ाकर बोले—"प्रभा, ईश्वरके लिये मुझपर दया करो, मैं बहुत दुःखी हूं। साल-भरसे ऐसा कोई दिन नहीं गया कि मैं रोकर न सोया हूं।"

प्रभाने उठकर कहा—"अपने किएका क्या इलाज ? जाती हूं, आराम कीजिए।"

एक क्षणमें मंगलाकी माता आकर बैठ गई, और बोली—'बेटा, तुमने तो बहुत पढ़ा-लिखा है, देस-विदेस घूम आए हो, सुन्दर बननेकी कोई दवा कहीं नहीं देखी ?"

सुरेशने विनेय-पूर्वक कहा—"माताजी, अब ईश्वरके लिये और लज्जित न कीजिये।

माता—तुमने तो मेरी बेटीके प्राण ले लिए! मैं क्या तुम्हें लज्जित करनेसे भी गई! जीमें तो था कि ऐसी-ऐसी सुनाऊँगी कि तुम भी याद करोगे; पर मेरे मेहमान हो, क्या जलाऊँ ? आराम करो।

सुरेश आशा और भयकी दशामें पड़े करवटें बदल रहे थे कि एकाएक द्वारपर किसीने धीरेसे कहा—"जाती क्यों नहीं, जागते तो हैं!" किसीने जवाब दिया—"लाज आती है।"

सुरेशने आवाज पहचानी। प्यासेको पानी मिल गया। एक क्षणमें मंगला उनके सम्मुख आई, और सिर झुकाकर खड़ी हो गई। सुरेशको उसके मुखपर एक अनूठी छवि दिखाई दी, जैसे कोई रोगी स्वास्थ्य-लाभ कर चुका हो।

रूप वही था, पर आँखें और थीं।

रानी सारन्धा

(१)

धेरी रातके सन्नाटेमें धसान नदी चट्टानोंसे टकराती हुई ऐसी सुहावनी मालूम होती थी जैसे घुमर-घुमर करती हुई चक्कियां। नदीके दाहने तटपर एक टीला है। उसपर एक पुराना दुर्ग बना हुआ है, जिसको जंगली वृक्षोंने घेर रक्खा है। टीलेके पूर्वकी ओर एक छोटा-सा गांव है। यह गढ़ी और गांव, दोनों एक बुन्देला सरदारके कीर्ति-चिह्न हैं। शताब्दियां व्यतीत हो गईं, बुन्देलखण्डमें कितने ही राज्योंका उदय और अस्त हुआ, मुसलमान आए और गए, बुन्देला राजा उठे और गिरे, कोई गाँव, कोई इलाका, ऐसा न था जो इन दुर्व्यवस्थाओं-से पीड़ित न हो, मगर इस दुर्गपर किसी शत्रुकी विजय-पताका न लहराई और इस गांवमें किसी विद्रोहका भी पदार्पण न हुआ। यह उसका सौभाग्य था।

नवजीवन

अनिरुद्धसिंह वीर राजपूत था। वह ज़माना ही ऐसा था, जब मनुष्य-मात्रको अपने बाहु-बल और पराक्रमहीका भरोसा था। एक ओर मुसलमान सेनाएं पैर जमाए खड़ी रहती थीं, दूसरी ओर बलवान राजा अपने निर्बल भाइयों-का गला घोटनेपर तत्पर रहते थे। अनिरुद्धसिंहके पास सवारों और पियादोंका एक छोटा-सा मगर सजीव दल था। इससे वह अपने कुल और मर्यादाकी रक्षा किया करता था। उसे कभी चैनसे बैठना नसीब न होता था। तीन वर्ष पहले उसका विवाह शीतलादेवीसे हुआ, मगर अनिरुद्ध मौजके दिन और विलासकी रातें पहाड़ोंमें काटता था और शीतला उसकी जानकी खैर मनानेमें। वह कितनी बार पतिसे अनुरोध कर चुकी थी, कितनी बार उसके पैरोंपर गिरकर रोई थी कि तुम मेरी आंखोंसे दूर न हो; मुझे हरिद्वार ले चलो, मुझे तुम्हारे साथ वन-वास स्वीकार है, यह वियोग अब नहीं सहा जाता। उसने प्यारसे कहा, जिद्दसे कहा, विनयकी, मगर अनिरुद्ध बुन्देला था। शीतला अपने किसी हथियारसे उसे परास्त न कर सकी।

(२)

अँधेरी रात थी। सारी दुनिया सोती थी; मगर तारे

आकाशमें जागते थे। शीतलादेवी पलङ्गपर पड़ी करवटें बदल रही थी और उसकी ननद सारन्धा फ़र्शपर बैठी हुई मधुर स्वरसे गाती थी—

"बिना रघुवीर कटत नहिं रैन।"

शीतलाने कहा—जी न जलाओ। क्या तुम्हें भी नींद नहीं आती ?

सारन्धा—तुम्हें लोरी सुना रही हूं।

शीतला—मेरी आँखोंसे तो नींद लोप हो गई।

सारन्धा—किसीको ढूंढ़ने गई होगी।

इतनेमें द्वार खुला और एक गठे हुए वदनके रूपवान पुरुषने भीतर प्रवेश किया। यह अनिरुद्ध था। उसके कपड़े भीगे हुए थे, और बदनपर कोई हथियार न था। शीतला चारपाईसे उतरकर जमीनपर बैठ गई।

सारन्धाने पूछा—"भैया, यह कपड़े भींगे क्यों है ?

अनिरुद्ध—नदी तैर कर आया हूं।

सारन्धा—हथियार क्या हुए ?

अनिरुद्ध—छिन गये।

सारन्धा—और साथके आदमी ?

अनिरुद्ध—सबने वीरगति पाई।

नवजीवन

शीतलाने दबी जबानसे कहा—"ईश्वरने ही कुशल किया……; मगर सारन्धाके तेवरोंपर बल पड़ गए और मुख-मण्डल गर्वसे सतेज हो गया। बोली—भैया, तुमने कुलकी मर्यादा खो दी। ऐसा तो कभी न हुआ था।

सारन्धा भाईपर जान देती थी। उसके मुँहसे धिक्कार सुनकर अनिरुद्ध लज्जा और खेदसे विकल हो गया। वह वीराग्नि, जिसे क्षण-भरके लिए अनुरागने दबा दिया था, फिर ज्वलन्त हो गई। वह उलटे पांव लौटा और यह कह-कर बाहर चला गया कि सारन्धा, तुमने मुझे सदैवके लिए सचेत कर दिया। यह बात मुझे कभी न भूलेगी।

अँधेरी रात थी। आकाश-मण्डलमें तारोंका प्रकाश बहुत धुँधला था। अनिरुद्ध किलेसे बाहर निकला। पल-भरमें नदीके उस पार जा पहुंचा, और फिर अन्धकारमें लुप्त हो गया। शीतला उसके पीछे-पीछे किलेकी दीवारों-तक आई; मगर जब अनिरुद्ध छलांग मारकर बाहर कूद पड़ा, तो वह विरहणी एक चट्टानपर बैठकर रोने लगी।

इतनेमें सारन्धा भी वहीं आ पहुंची। शीतलाने नागिनकी तरह बल खाकर कहा—मर्यादा इतनी प्यारी है?

सारन्धा—हाँ।

शीतला—अपना पति होता, तो हृदयमें छिपा लेती।

सारन्धा—न, छातीमें छुरी चुभा देती।

शीतलाने ऐंठकर कहा—डोलीमें छिपाती फिरोगी, मेरी बात गिरहमें बाँध लो।

सारन्धा—जिस दिन ऐसा होगा, मैं भी अपना वचन पूरा कर दिखाऊँगी।

इस घटनाके तीन महीने पीछे अनिरुद्ध मदरौनाको जीत कर लौटा और साल-भर पीछे सारन्धाका विवाह ओरछाके राजा चम्पतरायसे हो गया। मगर उस दिनकी बातें दोनों महिलाओंके हृदय-स्थलमें कांटेकी तरह खटकती रहीं।

(३)

राजा चम्पतराय बड़े प्रतिभाशाली पुरुष थे। सारी बुन्देला जाति उनके नामपर जान देती थी और उनके प्रभुत्वको मानती थी। गद्दीपर बैठते ही उन्होंने मुगल बादशाहोंको कर देना बन्द कर दिया और अपने बाहु-बलसे राज्य-विस्तार करने लगे। मुसलमानोंकी सेनाएं बार-बार उनपर हमले करती थीं; पर हारकर लौट जाती थीं।

यही समय था जब अनिरुद्धने सारन्धाका चम्पतरायसे

विवाह कर दिया। सारन्धाने मुँहमांगी मुराद पाई। उसकी यह अभिलाषा कि मेरा पति बुन्देला-जातिका कुल-तिलक हो, पूरी हुई। यद्यपि राजाके महलमें पांच रानियां थीं, मगर उन्हें शीघ्र ही मालूम हो गया कि वह देवी, जो हृदयमें मेरी पूजा करती है, सारन्धा है।

परन्तु कुछ ऐसी घटनाएं हुईं कि चम्पतरायको मुगल-बादशाहका आश्रित होना पड़ा। वह अपना राज्य अपने भाई पहाड़सिंहको सौंपकर आप देहलीको चला गया। यह शाहजहाँके शासनकालका अन्तिम भाग था। शाहज़ादा दाराशिकोह राजकीय कार्य्योंको संभालते थे। युवराजकी आंखोंमें शील था और चित्तमें उदारता। उन्होंने चम्पत-रायकी वीरताकी कथाएँ सुनी थीं, इसलिये उसका बहुत आदर-सम्मान किया, और कालपीकी बहुमूल्य जागीर उसके भेंट की, जिसकी सालाना आमदनी नौ लाख थी। यह पहला अवसर था कि चम्पतरायको आये-दिनके लड़ाई-झगड़ोंसे निवृत्ति मिली और उसके साथ ही भोग-विलासका प्राबल्य हुआ। रात-दिन आमोद-प्रमोदकी चर्चा रहने लगी। राजा विलासमें डूबे, रानियां जड़ाऊ गहनोंपर रीझीं। मगर सारन्धा इन दिनों बहुत उदास और संकुचित

रहती। वह इन रंगरलियोंसे दूर-दूर रहती, ये नृत्य और गानकी सभाएँ उसे सूनी प्रतीत होतीं!

एक दिन चम्पतरायने सारन्धासे कहा—सारन, तुम उदास क्यों रहती हो? मैं तुम्हें कभी हंसते नहीं देखता। क्या मुझसे नाराज हो?

सारन्धाकी आंखोंमें जल भर आया। बोली—नाथ! आप ऐसा विचार क्यों करते हैं? जहां आप प्रसन्न हैं, वहां मैं भी खुश हूं।

चम्पतराय—मैं जबसे यहां आया हूं, मैंने तुम्हारे मुख-कमलपर कभी मनोहारिणी मुसकिराहट नहीं देखी। तुमने कभी अपने हाथोंसे मुझे बीड़ा नहीं खिलाया। कभी मेरी पाग नहीं संवारी। कभी मेरे शरीरपर शस्त्र नहीं सजाये। कहीं प्रेम-लता मुरझाने तो नहीं लगी?

सारन्धा—प्राणनाथ! आप मुझसे ऐसी बात पूछते हैं, जिसका उत्तर मेरे पास नहीं है! यथार्थमें इन दिनों मेरा चित्त कुछ उदास रहता है। मैं बहुत चाहती हूं कि खुश रहूं, मगर एक बोझा-सा हृदयपर धरा रहता है।

चम्पतराय स्वयं आनन्दमें मग्न थे। इसलिए उनके विचारमें सारन्धाके असन्तुष्ट रहनेका कोई उचित कारण

नहीं हो सकता था। वह भौंहें सिकोड़कर बोले—मुझे तुम्हारे उदास रहनेका कोई विशेष कारण नहीं मालूम होता। ओरछेमें कौन-सा सुख था, जो यहां नहीं है?

सारन्धाका चेहरा लाल हो गया। बोली—मैं कुछ कहूं, आप नाराज तो न होंगे?

चम्पतराय—नहीं, शौकसे कहो।

सारन्धा—ओरछामें मैं एक राजाकी रानी थी, यहां मैं एक जागीरदारकी चेरी हूँ। ओरछामें मैं वह थी, जो अवधमें कौशल्या थीं। परन्तु यहां मैं बादशाहके एक सेवककी स्त्री हूं। जिस बादशाहके सामने आज आप आदरसे सिर झुकाते हैं, वह कल आपके नामसे काँपता था। रानीसे चेरी होकर भी प्रसन्न-चित्त होना मेरे वशमें नहीं है। आपने यह पद और ये विलासकी सामग्रियां बड़े मँहगे दामोंमें मोल ली हैं।

चम्पतरायके नेत्रोंसे एक पर्दा-सा हट गया। वे अबतक सारन्धाकी आत्मिक उच्चताको न जानते थे। जैसे बे-मां-बापका बालक मांकी चर्चा सुनकर रोने लगता है, उसी तरह ओरछाकी यादसे चम्पतरायकी आंखें सजल हो गईं।

उन्होंने आदर-युक्त अनुरागके साथ सारन्धाको हृदयसे लगा लिया।

आजसे उन्हें फिर उसी उजड़ी बस्तीकी फ़िक्र हुई, जहांसे धन और कीर्तिकी अभिलाषाएँ यहां खींच लाईं थीं।

(४)

मां अपने खोये हुए बालकको पाकर निहाल हो जाती है। चम्पतरायके आनेसे बुन्देलखण्ड निहाल हो गया। ओरछाके भाग जागे। नौबतें झड़ने लगीं और फिर सारन्धाके नेत्र-कमलोंमें जातीय अभिमानका आभास दिखलाई देने लगा।

यहां रहते कई महीने बीत गये। इसी महीनेमें शाहजहां बीमार पड़ा। शाहजादाओंमें पहलेसे ईर्षाकी अग्नि दहक रही थी। यह खबर सुनते ही ज्वाला प्रचण्ड हुई। संग्रामकी तैयारियां होने लगीं। शाहजादा मुराद और मुहीउद्दीन अपने-अपने दल सजाकर दक्खिनसे चले। वर्षाके दिन थे। उर्वरा भूमि रङ्ग रूप भरकर अपने सौंदर्यको दिखाती थी।

मुराद और मुहीउद्दीन (औरंगजेब) उमंगोंसे भरे हुए

कदम बढ़ाते चले आते थे। यहांतक कि वे धौलपुरके निकट चम्बलके तटपर आ पहुंचे; परन्तु यहां उन्होंने बादशाही सेनाको अपने शुभागमनके निमित्त तैयार पाया।

शाहज़ादे अब बड़ी चिन्तामें पड़े। सामने अगम्य नदी लहरें मार रही थी, लोभसे भी अधिक विस्तारवाली। घाट-पर लोहेकी दीवार खड़ी थी, किसी योगीके त्यागके सदृश सुदृढ़। विवश होकर चम्पतरायके पास संदेशा भेजा कि खुदाके लिए आकर हमारी डूबती हुई नावको पार लगाइए।

राजाने भवनमें जाकर सारन्धासे पूछा—इसका क्या उत्तर दूं।

सारन्धा—आपको मदद करनी होगी।

चम्पतराय—उनकी मदद करना दाराशिकोहसे बैर लेना है।

सारन्धा—यह सत्य है, परन्तु हाथ फैलानेकी मर्य्यादा भी तो निभानी चाहिए।

चम्पतराय—प्रिये! तुमने सोचकर जवाब नहीं दिया।

सारन्धा—प्राणनाथ! मैं अच्छी तरह जानती हूं कि यह मार्ग कठिन है और हमें अपने योद्धाओंका रक्त पानीके

समान बहाना पड़ेगा; परन्तु हम अपना रक्त बहायेंगे, और चम्बलकी लहरोंको लाल कर देंगे। विश्वास रखिए कि जबतक नदीकी धारा बहती रहेगी, वह हमारे वीरोंका कीर्ति-गान करती रहेगी। जबतक बुन्देलोंका एक भी नाम-लेवा रहेगा, यह रक्त-बिन्दु उसके माथेपर केशरका तिलक बनकर चमकेगा।

वायु-मण्डलमें मेघराजकी सेनाएँ उमड़ रही थीं। ओरछेके किलेसे बुन्देलोंकी एक काली घटा उठी और वेगके साथ चम्बलकी तरफ चली। प्रत्येक सिपाही वीर-रससे झूम रहा था। सारन्धाने दोनों राजकुमारोंको गलेसे लगा लिया और राजाको पानका बीड़ा देकर कहा-बुन्देलोंकी लाज अब तुम्हारे हाथ है।

आज उसका एक-एक अङ्ग मुसकिरा रहा है और हृदय हुलसित है। बुन्देलोंकी यह सेना देखकर शाहज़ादे फूले न समाये। राजा वहांकी अंगुल-अंगुल भूमिसे परिचित थे। उन्होंने बुन्देलोंको तो एक आड़में छिपा दिया और स्वयं शाहज़ादोंकी फौजको सजाकर नदीके किनारे-किनारे पश्चिमकी ओर चले। दाराशिकोहको भ्रम हुआ कि शत्रु किसी अन्य घाटसे नदी उतरना चाहता है। उन्होंने घाट-

परसे मोर्चे हटा लिये। घाटमें बैठे हुए बुन्देले इसी ताकमें थे। बाहर निकल पड़े और उन्होंने तुरन्त ही नदीमें घोड़े डाल दिये। चम्पतरायने शाहज़ादा दाराशिकोहको भुलावा देकर अपनी फौज़ घुमा दी और वह बुन्देलोंके पीछे चलता हुआ उसे पार उतार लाया। इस कठिन चालमें सात घण्टोंका विलम्ब हुआ; परन्तु जाकर देखा, तो वहां सात सौ बुन्देला योद्धाओंकी लाशें फड़क रही थीं।

राजाको देखते ही बुन्देलोंकी हिम्मत बँध गई। शाहज़ादाकी सेनाने भी 'अल्ला-हो-अकबर' की ध्वनिके साथ धावा किया। बादशाही सेनामें हलचल पड़ गई। उनकी पंक्तियां छिन्न-भिन्न हो गईं, हाथोंहाथ लड़ाई होने लगी, यहांतक कि शाम हो गई। रण-भूमि रुधिरसे लाल हो गई और आकाशमें अँधेरा छा गया। घमासानकी मार हो रही थी। बादशाही सेना शाहज़ादोंको दबाये आती थी। अकस्मात् पश्चिमसे फिर बुन्देलोंकी एक लहर उठी और इस वेगसे बादशाही सेनाकी पुश्तपर टकराई कि उसके कदम उखड़ गये। जीता हुआ मैदान हाथसे निकल गया। लोगोंको कौतूहल था कि यह दैवीय सहायता कहांसे आ गई। सरल स्वभावके लोगोंकी धारणा थी कि यह फ तहके

फरिश्ते हैं, शाहज़ादोंकी मददके लिये आये हैं। परन्तु जब राजा चम्पतराय निकट गये, तो सवारने घोड़ेसे उतरकर उनके चरणोंपर सिर झुका दिया। राजाको असीम आनन्द हुआ। यह देवी सारन्धा थी।

समर-भूमिका दृश्य इस समय अत्यन्त दुःखमय था। थोड़ी देर पहले जहां सजे हुए वीरोंके दल थे, वहां अब बे-जान लाशें फड़क रही थीं। मनुष्य अपने स्वार्थके लिये शुरू हीसे अपने भाइयोंकी हत्या करता आया है।

अब विजयी सेना लूटपर टूटी। पहले मर्द मर्दों से लड़ते थे, अब वे मुर्दों से लड़ रहे थे। वह वीरता और पराक्रमका चित्र था, यह नीचता और दुर्बलताकी ग्लानि-प्रद तसवीर थी। उस समय मनुष्य पशु बना हुआ था, अब वह पशुसे भी बढ़ गया था।

इस नोच-खसोटमें लोगोंको बादशाही सेनाके सेनापति वली-बहादुरखांकी लाश दिखाई दी। उसके निकट उसका घोड़ा खड़ा हुआ अपनी दुमसे मक्खियां उड़ा रहा था। राजाको घोड़ोंका शौक था। देखते ही वह उसपर मोहित हो गया। यह इरानी जातिका घोड़ा अति सुन्दर था। एक-एक अंग साँचेमें ढला हुआ, सिंहकीसी छाती, चीतेकी

सी कमर, उसका यह प्रेम और स्वामि-भक्ति देखकर लोगों को बड़ा कौतूहल हुआ। राजाने हुक्म दिया—खबरदार! इस प्रेमीपर कोई हथियार न चलाये, इसे जीता पकड़ लो, यह मेरे अस्तबलकी शोभा बढ़ायेगा। जो इसे पकड़कर मेरे पास लायेगा, उसे धनसे निहाल कर दूँगा।

योद्धागण चारों ओरसे लपके; परन्तु किसीको साहस न होता था कि उसके निकट जा सके। कोई पुचकारता था, कोई फन्देमें फसानेकी फिक्रमें था; पर कोई उपाय सफल न होता था। यहां सिपाहियोंका एक मेला-सा लगा हुआ था।

तब सारन्धा अपने खेमेसे निकली और निर्भय होकर घोड़ेके पास चली गई। उसकी आँखोंमें प्रेमका प्रकाश था, छलका नहीं। घोड़ेने सिर झुका दिया। रानीने उसकी गर्दनपर हाथ रक्खा, और वह उसकी पीठ सुहलाने लगी। घोड़ेने उसके अंचलमें मुँह छिपा लिया। रानी उसकी रास पकड़कर खेमेकी ओर चली। घोड़ा इस तरह चुपचाप उसके पीछे चला, मानों सदैवसे उसका सेवक है।

पर बहुत अच्छा होता कि घोड़ेने सारन्धासे भी निष्ठुरता की होती। यही सुन्दर घोड़ा आगे चलकर

इस राजपरिवारके निमित्त सोनेका मृग प्रमाणित हुआ।

(५)

संसार एक रणक्षेत्र है। इस मैदानमें उसी सेनापतिको विजय लाभ होता है, जो अवसरको पहचानता है। ऐसा सेनापति अवसर देखकर जितने उत्साहसे आगे बढ़ता है, उतने ही उत्साहसे आपत्तिके समयपर पीछे हट जाता है। वह वीर पुरुष राष्ट्रका निर्माता होता है, और इतिहास उसके नामपर यशके फूलोंकी वर्षा करता है।

पर इस मैदानमें कभी-कभी ऐसे सिपाही भी आ जाते हैं, जो अवसरपर कदम बढ़ाना जानते हैं, लेकिन संकटमें पीछे हटना नहीं जानते। ऐसा रणधीर पुरुष विजयको नीतिकी भेंट कर देता है। वह अपनी सेनाका नाम मिटा देगा, किन्तु जहां एक बार पहुंच गया है, वहां-से कदम पीछे न हटायेगा। उनमें कोई विरला ही संसार-क्षेत्रमें विजय प्राप्त करता है, तथापि प्रायः उसकी हार विजयसे भी अधिक गौरवपूर्ण होती है। अगर वह अनुभव-शील सेनापति राष्ट्रोंकी नीव डालता है, तो वह आनपर जान देनेवाला, यह मुँह न मोड़नेवाला सिपाही राष्ट्रके

भावोंको उच्च करता है। इसे कार्यक्षेत्रमें चाहे सफलता न हो; किन्तु जब किसी भाषण या सभामें उसका नाम जबानपर आ जाता है, तो श्रोतागण एक स्वरसे उसके कीर्ति-गौरवको प्रतिध्वनित कर देते हैं। सारन्धा इन्हीं 'आनपर जान देनेवालों' में थी।

शाहजादा मुहीउद्दीन चम्बलके किनारेसे आगरेकी ओर चला, तो सौभाग्य उसके सिरपर चँवर हिलाता था। जब वह आगरे पहुंचा, तो विजयदेवीने उसके लिये सिंहासन सजा दिया।

औरंगजेब गुणज्ञ था। उसने बादशाही सरदारोंके अपराध क्षमा कर दिये, उनके राज्य-पद लौटा दिये, और राजा चम्पतरायको उसके बहुमूल्य कृत्योंके उपलक्षमें 'बारह हजारी मनसब' प्रदान किया। ओरछासे बनारस और बनारससे यमुनातक उसकी जागीर नियत की गई। बुन्देला राजा फिरसे राज्य-सेवक बना, वह पुनः सुख-विलासमें डूबा और रानी सारन्धा एक बार और पराधीनताके शोकसे घुलने लगी।

वलीबहादुर खाँ बड़ा वाक्यचतुर व्यक्ति था। उसकी मृदुलताने शीघ्र ही उसे बादशाह आलमगीरका विश्वास-

पात्र बना दिया। उसपर राज-सभामें सम्मानकी दृष्टि पड़ने लगी।

खाँसाहबके मनमें अपने घोड़ेके हाथसे निकल जानेका बड़ा शोक था। एक दिन कुँवर छत्रपाल उसी घोड़ेपर सवार होकर सैरको गया था। वह खाँसाहबके महलकी तरफ जा निकला। वलीबहादुर ऐसे ही अवसरकी ताकमें था। उसने तुरन्त अपने सेवकोंको इशारा किया। राज-कुमार अकेला क्या करता। घोड़ा छिनवाकर वह पैदल घर आया और उसने सारन्धासे सारा हाल कहा। रानीका चेहरा तमतमा गया। बोली—मुझे इसका शोक नहीं कि घोड़ा हाथसे गया। शोक इसका है कि तू उसे खोकर जीता क्यों लौटा? क्या तेरे शरीरमें बुन्देलोंका रक्त नहीं है! घोड़ा न मिलता न सही, किन्तु तुझे दिखा देना चाहिए था कि एक बुन्देला बालकसे उसका घोड़ा छीन लेना हँसी नहीं है!

यह कहकर उसने अपने पच्चीस योद्धाओंको तैयार होनेकी आज्ञा दी, स्वयं अस्त्र धारण किये और योद्धाओंके साथ वलीबहादुर खाँके निवास-स्थानपर जा पहुंची। खांसाहब उसी घोड़ेपर सवार होकर दरबार चले गये थे।

सारन्धा दरबारकी तरफ चली और एक क्षणमें किसी वेगवती नदीके समान बादशाही दरबारके सामने जा पहुंची। यह कैफियत देखते ही दरबारमें हलचल मच गई। अधिकारिवर्ग इधर-उधरसे जाकर जमा हो गये। आलमगीर भी सहनमें निकल आये। लोग अपनी-अपनी तलवारें संभालने लगे और चारों तरफ शोर मच गया। कितने ही नेत्रोंने इसी दरबारमें अमरसिंहकी तलवारकी चमक देखी थी। उन्हें वही घटना फिर याद आ गई।

सारन्धाने उच्च स्वरसे कहा—खाँसाहब! बड़ी लज्जाकी बात है कि आपने वह वीरता जो चम्बलके तटपर दिखानी चाहिए थी, आज एक अबोध बालकके सम्मुख दिखाई है। क्या यह उचित था कि आप उससे घोड़ा छीन लेते?

वलीबहादुरखाँकी आँखोंसे अग्नि-ज्वाला निकल रही थी। वे कड़ी आवाजसे बोले—किसी गैरकी क्या मजाल है कि मेरी चीज अपने काममें लाये?

रानी—वह आपकी चीज नहीं, मेरी है। मैंने उसे रणभूमिमें पाया है और उसपर मेरा अधिकार है। क्या रणनीतिकी इतनी मोटी बात भी आप नहीं जानते?

खाँसाहब—वह घोड़ा मैं नहीं दे सकता, उसके बदलेमें सारा अस्तबल आपको नजर है।

रानी सारन्धा

रानी—मैं अपना घोड़ा लूँगी।

खाँसाहब—मैं उसके बराबर जवाहरात दे सकता हूं; परन्तु घोड़ा नहीं दे सकता।

रानी—तो फिर इसका निश्चय तलवारोंसे होगा।

बुन्देला योद्धाओंने तलवारें सौंत लीं और निकट था कि दरबारकी भूमि रक्तसे प्लावित हो जाय कि बादशाह आलमगीरने बीचमें आकर कहा—रानी साहबा! आप सिपाहियोंको रोकें। घोड़ा आपको मिल जायगा; परन्तु उसका मूल्य बहुत देना पड़ेगा।

रानी—मैं उसके लिये अपना सर्वस्व त्यागनेपर तैयार हूं।

बादशाह—जागीर और मनसब भी?

रानी—जागीर और मनसब कोई चीज नहीं।

बादशाह—अपना राज्य भी?

रानी—हाँ, राज्य भी।

बादशाह—एक घोड़ेके लिए?

रानी—नहीं, उस पदार्थके लिए जो संसारमें सबसे अधिक मूल्यवान् है।

बादशाह—वह क्या है?

रानी—अपनी आन।

इस भांति रानीने एक घोड़ेके लिए अपनी विस्तृत जागीर, उच्च राज्यपद और राज-सम्मान सब हाथसे खोया और केवल इतना ही नहीं, भविष्यके लिये कांटे भी बोये। इस घड़ीसे अन्ततक चम्पतरायको कभी शान्ति न मिली।

(६)

राजा चम्पतरायने फिर ओरछेके किलेमें पदार्पण किया। उन्हें मनसब और जागीरके हाथसे निकल जानेका अत्यन्त शोक हुआ ; किन्तु उन्होंने अपने मुँहसे शिकायतका एक शब्द भी नहीं निकाला। वे सारन्धाके स्वभावको भली-भांति जानते थे। शिकायत इस समय उसके आत्मगौरवपर कुठारका काम करती। कुछ दिन यहां शान्तिपूर्वक व्यतीत हुए। लेकिन बादशाह सारन्धाकी कठोर बातें भूला न था। वह क्षमा करना जानता ही न था। ज्यों ही भाइयोंकी ओरसे निश्चिन्त हुआ, उसने एक बड़ी सेना चम्पतरायका गर्व चूर्ण करनेके निमित्त भेजी और बाईस अनुभवशील सरदार इस मुहीमपर नियुक्त किये। शुभकरण बुंदेला बादशाहका सूबेदार था। वह चम्पतराय-

का बचपनका मित्र और सहपाठी था। उसने चम्पतरायको परास्त करनेका बीड़ा उठाया। और भी कितने ही बुन्देला सरदार राजासे विमुख होकर बादशाही सूबेदारसे आ मिले। एक घोर संग्राम हुआ। भाइयोंकी तलवारें रक्तसे लाल हुई। यद्यपि इस युद्धमें राजाको विजय प्राप्त हुई; लेकिन उनकी शक्ति सदाके लिये क्षीण हो गई। निकटवर्ती बुन्देले राजा, जो चम्पतरायके बाहु-बल थे, बादशाहके कृपाकांक्षी बन बैठे। साथियोंमें कुछ तो काम आये, कुछ दगा कर गये। यहांतक कि निज सम्बन्धियोंने भी आँखें चुरा लीं; परन्तु इन कठिनाइयोंमें भी चम्पतरायने हिम्मत नहीं हारी। धीरजको न छोड़ा। उन्होंने ओरछा छोड़ दिया; और तीन वर्षतक बुन्देलखण्डके सघन पर्वतोंपर छिपे फिरते रहे। बादशाही सेनाएँ शिकारी जानवरोंकी भांति सारे देशमें मँडरा रही थीं। आये-दिन राजाका किसी-न किसीसे सामना हो जाता था। सारन्धा सदैव उनके साथ रहती, और उनका साहस बढ़ाया करती। बड़ी-बड़ी आपत्तियोंमें भी, जब कि धैर्य लुप्त हो जाता— और आशा साथ छोड़ देती—आत्मरक्षाका धर्म उसे सम्हाले रहता था। तीन सालके बाद अन्तमें बादशाहके

सूबेदारोंने आलमगीरको सूचना दी कि इस शेरका शिकार आपके सिवाय और किसीसे न होगा। उत्तर आया कि सेनाको हटा लो और घेरा उठा लो। राजाने समझा, सङ्कटसे निवृत्ति हुई, पर यह बात शीघ्र ही भ्रमात्मक सिद्ध हो गई।

(७)

तीन सप्ताहसे बादशाही सेनाने ओरछा घेर रक्खा है। जिस तरह कठोर वचन हृदयको छेद डालते हैं, उसी तरह तोपोंके गोलोंने दीवारोंको छेद डाला है। किलेमें २० हजार आदमी घिरे हुए हैं, लेकिन उनमें आधेसे अधिक स्त्रियां और उनसे कुछ ही कम बालक हैं। मर्दों की संख्या दिनों-दिन न्यून होती जाती है। आने-जानेके मार्ग चारों तरफसे बन्द हैं। हवाका भी गुजर नहीं। रसदका सामान बहुत कम रह गया है। स्त्रियां पुरुषों और बालकोंको जीवित रखनेके लिये आप उपवास करती हैं। लोग बहुत हताश हो रहे हैं। औरतें सूर्य्यनारायणकी ओर हाथ उठा-उठाकर शत्रुको कोसती हैं। बालकवृन्द मारे क्रोधके दीवरोंकी आड़से उनपर पत्थर फेंकते हैं, जो मुश्किलसे दीवारके उस पार जाते हैं। राजा चम्पतराय स्वयं ज्वरसे पीड़ित

हैं। उन्होंने कई दिनसे चारपाई नहीं छोड़ी। उन्हें देखकर लोगोंको कुछ ढाढ़स होता था; लेकिन उनकी बीमारीसे सारे किलेमें नैराश्य छाया हुआ है।

राजाने सारन्धासे कहा—आज शत्रु जरूर किलेमें घुस आयेंगे।

सारन्धा—ईश्वर न करे कि इन आंखोंसे वह दिन देखना पड़े।

राजा—मुझे बड़ी चिन्ता इन अनाथ स्त्रियों और बालकोंकी है। गेहूंके साथ यह घुन भी पिस जायेंगे।

सारन्धा—हम लोग यहांसे निकल जायें तो कैसा?

राजा—इन अनाथोंको छोड़कर?

सारन्धा—इस समय इन्हें छोड़ देने हीमें कुशल है। हम न होंगे, तो शत्रु इनपर कुछ दया अवश्य ही करेंगे।

राजा—नहीं, ये लोग मुझसे न छोड़े जायेंगे। जिन मर्दोंने अपनी जान हमारी सेवामें अर्पण कर दी है, उनकी स्त्रियों और बच्चोंको मैं कदापि नहीं छोड़ सकता।

सारन्धा—लेकिन यहाँ रहकर हम उनकी कुछ मदद भी तो नहीं कर सकते।

राजा—उनके साथ प्राण तो दे सकते हैं? मैं उनकी

रक्षामें अपनी जान लड़ा दूँगा। उनके लिये बादशाही सेनाकी खुशामद करूँगा। कारावासकी कठिनाइयां सहूंगा, किन्तु इस संकटमें उन्हें छोड़ नहीं सकता।

सारन्धाने लज्जित होकर सिर झुका लिया और सोचने लगी, निस्सन्देह अपने प्रिय साथियोंको आगकी आंचमें छोड़कर अपनी जान बचाना घोर नीचता है। मैं ऐसी स्वार्थान्ध क्यों हो गई हूं? लेकिन फिर एकाएक विचार उत्पन्न हुआ। बोली—यदि आपको विश्वास हो जाय कि इन आदमियोंके साथ कोई अन्याय न किया जायगा, तब तो आपको चलनेमें कोई बाधा न होगी?

राजा—(सोचकर) कौन विश्वास दिलायेगा?

सारन्धा—बादशाहके सेनापतिका प्रतिज्ञा-पत्र।

राजा—हां, तब मैं सानन्द चलूँगा।

सारन्धा विचार-सागरमें डूबी। बादशाहके सेनापतिसे क्योंकर यह प्रतिज्ञा कराऊँ? कौन यह प्रस्ताव लेकर वहां जायगा और वे निर्दयी ऐसी प्रतिज्ञा करने ही क्यों लगे। उन्हें तो अपनी विजयकी पूरी आशा है। मेरे यहां ऐसा नीति-कुशल, वाक्पटु चतुर कौन है, जो इस दुस्तर कार्यको सिद्ध करे। छत्रसाल चाहे तो कर सकता है। उसमें ये सब गुण मौजद हैं।

इस तरह मनमें निश्चय करके रानीने छत्रसालको बुलाया। यह उसके चारों पुत्रोंमें सबसे बुद्धिमान् और साहसी था। रानी उसे सबसे अधिक प्यार करती थी। जब छत्रसालने आकर रानीको प्रणाम किया तो उसके कमल-नेत्र सजल हो गए और हृदयसे दीर्घ निश्वास निकल आया।

छत्रसाल—माता, मेरे लिए क्या आज्ञा है?

रानी—लड़ाईका क्या ढँग है?

छत्रसाल–हमारे पचास योद्धा अबतक काम आ चुके हैं।

रानी—बुन्देलोंकी लाज अब ईश्वरके हाथ है।

छत्रसाल—हम आज रातको छापा मारेंगे।

रानीने संक्षेपसे अपना प्रस्ताव छत्रसालके सामने उपस्थित किया और कहा—यह काम किसको सौंपा जाये?

छत्रसाल—मुझको।

"तुम इसे पूरा कर दिखाओगे?"

"हां, मुझे पूर्ण विश्वास है।"

"अच्छा जाओ, परमात्मा तुम्हारा मनोरथ पूरा करे।"

छत्रसाल जब चला तो रानीने उसे हृदयसे लगा लिया और तब आकाशकी ओर दोनों हाथ उठाकर कहा—दया-निधि, मैंने अपना तरुण और होनहार पुत्र बुन्देलोंकी आन-के आगे भेंट कर दिया। अब इस आनको निभाना तुम्हारा काम है। मैंने बड़ी मूल्यवान् वस्तु अर्पित की है। इसे स्वीकार करो।

(८)

दूसरे दिन प्रातःकाल सारन्धा स्नान करके थालमें पूजाकी सामग्री लिये मन्दिरको चली। उसका चेहरा पीला पड़ गया था, और आँखों-तले अँधेरा छाया जाता था। वह मन्दिरके द्वारपर पहुंची थी कि उसके थालमें बाहरसे आकर एक तीर गिरा। तीरकी नोकपर एक कागजका पुर्जा लिपटा हुआ था। सारन्धाने थाल मन्दिरके चबूतरे-पर रख दिया और पुर्जेको खोलकर देखा, तो आनन्दसे चेहरा खिल गया; लेकिन यह आनन्द क्षणभरका मेहमान था। हाय! इस पुर्जेके लिये मैंने अपना सबसे प्यारा पुत्र हाथसे खो दिया है। कागजके टुकड़ेको इतने महँगे दामोंमें और किसने लिया होगा!

मन्दिरसे लौटकर सारन्धा राजा चम्पतरायके पास

गई और बोली—प्राणनाथ ! आपने जो वचन दिया था; उसे पूरा कीजिए।

राजाने चौंककर पूछा—तुमने अपना वादा पूरा कर लिया ? रानीने वह प्रतिज्ञा-पत्र राजाको दे दिया। चम्पत-रायने उसे गौरवसे देखा, फिर बोले—अब मैं चलूंगा और ईश्वरने चाहा, तो एक बेर फिर शत्रुओंकी खबर लूंगा; लेकिन सारन ! सच बताओ, इस पत्रके लिये क्या देना पड़ा ?

रानीने कुण्ठित स्वरसे कहा—बहुत कुछ।

राजा—सुनूं ?

रानी—एक जवान पुत्र।

राजाको बाण-सा लगा। पूछा—कौन ? अङ्गदराय ?

रानी—नहीं।

राजा—रतनसाह ?

रानी—नहीं।

राजा—छत्रसाल ?

रानी—हां।

जैसे कोई पक्षी गोली खाकर परोंको फड़फड़ाता है और तब बे-दम होकर गिर पड़ता है, उसी भांति चम्पतराय

पलंगसे उछले और फिर अचेत होकर गिर पड़े। छत्रसाल उनका परमप्रिय पुत्र था। उनके भविष्यकी सारी कामनाएँ उसीपर अवलम्बित थीं। जब चेत हुआ, तो बोले—सारन, तुमने बुरा किया। अगर छत्रसाल मारा गया, तो बुन्देला वंशका नाश हो जायगा।

अँधेरी रात थी। रानी सारन्धा घोड़ेपर सवार होकर चम्पतरायको पालकीमें बैठाए किलेके गुप्त मार्गसे निकली जाती थी। आजसे बहुत समय पहले एक दिन ऐसी ही अँधेरी, दुखमय रात्रि थी, तब सारन्धाने शीतलादेवीको कुछ कठोर वचन कहे थे। शीतलादेवीने उस समय जो भविष्यद्वाणी की थी, वह आज पूरी हुई! देवीने उस समय जो भविष्यवाणी की थी, वह आज पूरी हुई। क्या सारन्धाने उसका जो उत्तर दिया था, वह भी पूरा होकर रहेगा?

(६)

मध्याह्न था। सूर्यनारायण सिरपर आकर अग्निकी वर्षा कर रहे थे। शरीरको झुलसानेवाली प्रचण्ड, प्रखर वायु वन और पर्वतोंमें आग लगाती फिरती थी। ऐसा विदित होता था, मानों अग्निदेवकी समस्त सेना गरजती हुई चली

आ रही है। गगनमण्डल इस भयसे कांप रहा था। रानी सारन्धा घोड़ेपर सवार, चम्पतरायको लिए, पश्चिमकी तरफ़ चली जाती थी। ओरछा दस कोस पीछे छूट चुका था और प्रतिक्षण यह अनुमान स्थिर होता जाता था कि अब हम भयके क्षेत्रसे बाहर निकल आए। राजा पालकीमें अचेत पड़े हुए थे और कहार पसीनेमें शराबोर थे। पालकीके पीछे पांच सवार घोड़ा बढ़ाए चले आते थे। प्यासके मारे सबका बुरा हाल था। तालू सूखा जाता था। किसी वृक्षकी छांह और कुएँकी तलाशमें आंखें चारों ओर दौड़ रही थीं।

अचानक सारन्धाने पीछेकी तरफ फिरकर देखा, तो उसे सवारोंका एक दल आता हुआ दिखाई दिया। उसका माथा ठनका कि अब कुशल नही है। ये लोग अवश्य हमारे शत्रु हैं। फिर विचार हुआ कि शायद मेरे राजकुमार अपने आदमियोंको लिए हमारी सहायताको आ रहे हैं। नैराश्यमें भी आशा साथ नहीं छोड़ती। कई मिनटतक वह इसी आशा और भयकी अवस्थामें रही। यहांतक कि वह दल निकट आ गया और सिपाहियोंके वस्त्र साफ नजर आने लगे। रानीने एक ठण्डी सांस ली, उसका शरीर तृणवत् कांपने लगा। यह बादशाही सेनाके लोग थे।

नवजीवन

सारन्धाने कहारोंसे कहा—डोली रोक लो। बुन्देला सिपाहियोंने भी तलवारें खींच लीं। राजाकी अवस्था बहुत शोचनीय थी; किन्तु जैसे दबी हुई आग हवा लगते ही प्रदीप्त हो जाती है, उसी प्रकार इस संकटका ज्ञान होते ही उनके जर्जर शरीरमें वीरात्मा चमक उठी। वे पालकीका पर्दा उठाकर बाहर निकल आए। धनुष-बाण हाथमें ले लिया; किन्तु वह धनुष जो उनके हाथमें इन्द्रका वज्र बन जाता था, इस समय ज़रा भी न झुका। सिरमें चक्कर आया, पैर थर्राये, और वे धरतीपर गिर पड़े। भावी अमंगलकी सूचना मिल गई। उस पंख-रहित पक्षीके सदृश्य जो सांपको अपनी तरफ़ आते देखकर ऊपरको उचकता और फिर गिर पड़ता है, राजा चम्पतराय फिर संभलकर उठे और गिर पड़े। सारन्धाने उन्हें संभाल कर बैठाया, और रोकर बोलनेकी चेष्टा की; परन्तु मुँहसे केवल इतना निकला—प्राणनाथ!—इसके आगे उसके मुँहसे एक शब्द भी न निकल सका। आनपर मरनेवाली सारन्धा इस समय साधारण स्त्रियोंकी भांति शक्तिहीन हो गई; लेकिन एक अंशतक यह निर्बलता स्त्री जातिकी शोभा भी तो है!

चम्पतराय बोले—सारन! देखो हमारा एक और वीर

ज़मीनपर गिरा। शोक! जिस आपत्तिसे यावज्जीवन डरता रहा, उसने इस अन्तिम समयमें आ घेरा। मेरी आंखोंके सामने शत्रु तुम्हारे कोमल शरीरमें हाथ लगायेंगे, और मैं जगहसे हिल भी न सकूँगा। हाय! मृत्यु, तू कब आयेगी। यह कहते-कहते उन्हें एक विचार आया। तलवारकी तरफ़ हाथ बढ़ाया, मगर हाथोंमें दम न था। तब सारन्धासे बोले—प्रिये! तुमने कितने ही अवसरोंपर मेरी आन निभाई है।

इतना सुनते ही सारन्धाके मुरझाये हुए मुखपर लाली दौड़ गई, आँसू सूख गये। इस आशाने कि मैं अब भी पति-के कुछ काम आ सकती हूं, उसके हृदयमें बलका संचार कर दिया। वह राजाकी ओर विश्वासोत्पादक भावसे देखकर बोली—ईश्वरने चाहा, तो मरते दमतक निबाहूंगी।

रानीने समझा, राजा मुझे प्राण दे देनेका संकेत कर रहे हैं।

चम्पतराय—तुमने मेरी बात कभी नहीं टाली।

सारन्धा—मरते दमतक न टालूंगी।

राजा—यह मेरी अन्तिम याचना है। इसे अस्वीकार करना।

नवजीवन

सारन्धाने तलवार निकालकर उसे अपने वक्षःस्थल-पर रख लिया और कहा—यह आपकी आज्ञा नहीं है, मेरी हार्दिक अभिलाषा है कि मरूं तो यह मस्तक आपके चरण-कमलोंपर हो।

चम्पतराय—तुमने मेरा मतलब नहीं समझा। क्या तुम मुझे इसलिए शत्रुओंके हाथमें छोड़ जाओगी कि मैं बेड़ियां पहने हुए दिल्लीकी गलियोंमें निन्दाका पात्र बनूं ?

रानीने जिज्ञासा-दृष्टिसे राजाको देखा। वह उनका मतलब नहीं समझी।

राजा—मैं तुमसे एक वरदान माँगता हूं।

रानी—सहर्ष आज्ञा कीजिए।

राजा—यह मेरी अन्तिम प्रार्थना है। जो कुछ कहूंगा, करोगी ?

रानी—सिरके बल करूंगी।

राजा—देखो, तुमने वचन दिया है। इनकार न करना।

रानी—(कांपकर) आपके कहनेकी देर है।

राजा—अपनी तलवार मेरी छातीमें चुभो दो।

रानीके हृदयपर बज्रपात-सा हो गया। बोली—जीवन-नाथ !

इसके आगे वह और कुछ न बोल सकी;—आँखोंमें नैराश्य छा गया!

राजा—मैं बेड़ियां पहननेके लिए जीवित रहना नहीं चाहता।

रानी – हाय, मुझसे यह कैसे होगा!

पांचवां और अन्तिम सिपाही धरतीपर गिरा। राजाने झुँझलाकर कहा—इसी जीवटपर आन निभानेका गर्व था?

बादशाहके सिपाही राजाकी तरफ लपके। राजाने नैराश्यपूर्ण भावसे रानीकी ओर देखा। रानी क्षणभर अनिश्चित-रूपसे खड़ी रही; लेकिन संकटमें हमारी निश्चयात्मक शक्ति बलवान हो जाती है। निकट था कि सिपाही लोग राजाको पकड़ लें कि सारन्धाने बिजलीकी भांति लपककर अपनी तलवार राजाके हृदयमें चुभो दी।

प्रेमकी नाव प्रेम-सागरमें डूब गई। राजाके हृदयसे रुधिरकी धारा निकल रही थी; पर चेहरेपर शांति छाई हुई थी।

कैसा करुण दृश्य है! वह स्त्री जो अपने पतिपर प्राण देती थी, आज उसकी प्राणघातिका है। जिस हृदयसे

अलिङ्गित होकर उसने यौवन-सुख लूटा, जो हृदय उसकी अभिलाषाओंका केन्द्र था, जो हृदय उसके अभिमानका पोषक था, उसी हृदयको आज सारन्धाकी तलवार छेद रही है। संसारके इतिहासमें और किस स्त्रीकी तलवारसे ऐसा काम हुआ है ?

आह! आत्माभिमानका कैसा विषादमय अन्त है। उदयपुर और मारवाड़के इतिहासमें भी आत्म-गौरवकी ऐसी घटनाएँ नहीं मिलतीं।

बादशाही सिपाही सारन्धाका यह साहस और धैर्य देखकर दंग रह गए। सरदारने आगे बढ़कर कहा—रानी साहबा! खुदा गवाह है; हम सब आपके गुलाम हैं। आप-का जो हुक्म हो, उसे ब-सरोचश्म बजा लायेंगे।

सारन्धाने कहा—अगर हमारे पुत्रोंमेंसे कोई जीवित हो, तो ये दोनों लाशें उसे सौंप देना।

यह कहकर उसने वही तलवार अपने हृदयमें चुभो ली। जब वह अचेत होकर धरतीपर गिरी, तो उसका सिर राजा चम्पतरायकी छातीपर था!

बूढ़ी काकी

ढ़ापा बहुधा बचपनका पुनरागमन हुआ करता है। बूढ़ी काकीमें जिह्वास्वाद्के सिवा और कोई चेष्टा शेष न थी और न अपने कष्टों-की ओर आकर्षित करनेका रोनेके अतिरिक्त कोई दूसरा सहारा ही। समस्त इन्द्रियां, नेत्र, हाथ और पैर जवाब दे चुके थे। पृथ्वीपर पड़ी रहतीं और जब घरवाले कोई बात उनकी इक्षाके प्रति-कूल करते, या भोजनका समय टल जाता, उसका परि-माण पूर्ण न होता; अथवा बाजारसे कोई वस्तु आती और उन्हें न मिलती तो ये रोने लगती थीं। उनका रोना-सिसकना साधारण रोना न था, वह गला फाड़-फाड़कर रोती थीं।

उनके पतिदेवको स्वर्ग सिधारे कालान्तर हो चुका था। बेटे तरुण हो-होकर चल बसे थे। अब एक भतीजेके

सिवाय और कोई न था। उसी भतीजेके नाम उन्होंने अपनी सारी सम्पत्ति लिख दी थी। भतीजेने सम्पत्ति लिखाते समय तो खूब लम्बे-चौड़े वादे किये, परन्तु वे सब केवल कुली डिपोके दलालोंके दिखाये हुए सब्ज बाग थे। यद्यपि उस सम्पत्तिकी वार्षिक आय डेढ़ दो सौ रुपयेसे कम न थी तथापि बूढ़ी काकीको पेटभर भोजन भी कठिनाईसे मिलता था। इसमें उनके भतीजे पण्डित बुद्धिरामका अपराध था, अथवा उनकी अर्द्धाङ्गिनी श्रीमती रूपाका, इसका निर्णय करना सहज नहीं। बुद्धिराम स्वभावके सज्जन थे, किन्तु उसी समयतक जबतक कि उनके कोषपर कोई आंच न आये। रूपा स्वभावसे तीव्र थी सही, पर ईश्वरसे डरती थी। अतएव बूढ़ी काकीको उसकी तीव्रता उतनी न खलती थी जितनी बुद्धिरामकी भलमनसाहत।

बुद्धिरामको कभी-कभी अपने अत्याचारका खेद होता था। विचारते कि इसी सम्पत्तिके कारण मैं इस समय भलामानुष बना बैठा हूं। यदि मौखिक आश्वासन और सूखी सहानुभूतिसे स्थितिमें सुधार हो सकता तो उन्हें कदाचित कोई आपत्ति न होती, परन्तु विशेष व्ययका भय

उनकी सचेष्टाको दबाये रखता था। यहांतक कि यदि द्वारपर कोई भला आदमी बैठा होता और बूढ़ी काकी उस समय अपना राग अलापने लगतीं तो वह आग हो जाते और घरमें आकर उन्हें जोरसे डांटते। लड़कोंको बुड्ढोंसे स्वाभाविक विद्वेष होता ही है और फिर जब माता-पिता-का यह रंग देखते तो बूढ़ी काकीको और भी सताया करते। कोई चुटकी काटकर भागता, कोई उनपर पानीकी कुल्ली कर देता। काकी चीख मारकर रोतीं, परन्तु यह बात प्रसिद्ध थी कि वह केवल खानेके लिये रोती हैं, अतएव उनके सन्ताप और आर्त्तनादपर कोई ध्यान नहीं देता था। हां, काकी कभी क्रोधातुर होकर बच्चोंको गालियां देने लगतीं तो रूपा घटनास्थलपर अवश्य आ पहुंचती। इस भयसे काकी अपनी जिह्वा-कृपाणका कदाचित् ही प्रयोग करती थीं, यद्यपि उपद्रव-शांतिका यह उपाय रोनेसे कहीं अधिक उपयुक्त था!

सम्पूर्ण परिवारमें यदि काकीसे किसीको अनुराग था, तो वह बुद्धिरामकी छोटी लड़की लाडली थी। लाडली अपने दोनों भाइयोंके भयसे अपने हिस्सेकी मिठाई चबेना बूढ़ी काकीके पास बैठकर खाया करती थी। यही उसका

रक्षागार था और यद्यपि काकीकी शरण उनकी लोलुपता-के कारण बहुत महंगी पड़ती थी, तथापि भाइयोंके अन्यायसे कहीं सुलभ थी। इसी स्वार्थानुकूलताने उन दोनोंमें प्रेम और सहानुभूतिका आरोपण कर दिया था।

रातका समय था। बुद्धिरामके द्वारपर सहनाई बज रही थी और गांवके बच्चोंका झुंड विस्मयपूर्ण नेत्रोंसे गानेका रसास्वादन कर रहा था। चारपाइयोंपर मेहमान विश्राम करते हुए नाइयोंसे मुक्कियां लगवा रहे थे। समीप ही खड़ा हुआ भाट विरदावली सुना रहा था और कुछ भावज्ञ मेहमानोंके "वाह, वाह" पर ऐसा खुश हो रहा था मानों इस वाह-वाहका यथार्थमें वही अधिकारी है। दो-एक अङ्गरेजी पढ़े हुए नवयुवक इन व्यवहारोंसे उदासीन थे। वे इस गँवार-मण्डलीमें बोलना अथवा सम्मिलित होना अपनी प्रतिष्ठाके प्रतिकूल समझते थे।

आज बुद्धिरामके बड़े लड़के सुखरामका तिलक आया है। यह उसीका उत्सव है। घरके भीतर स्त्रियां गा रही थीं और रूपा मेहमानोंके लिये भोजनके प्रबन्धमें व्यस्त थी। भट्ठियोंपर कड़ाह चढ़े थे। एकमें पूड़ियां-कचौरिया निकल रही थीं, दूसरेमें अन्य पकवान बनते थे। एक बड़े हंडेमें

मसालेदार तरकारी पक रही थी। घी और मसालेकी क्षुधावर्द्धक सुगन्धि चारों ओर फैली हुई थी।

बूढ़ी काकी अपनी कोठरीमें शोकमय विचारकी भांति बैठी हुई थीं। यह स्वाद-मिश्रित सुगंध उन्हें बेचैन कर रही थी। वे मन-ही-मन विचार कर रही थीं, सम्भवतः मुझे पूड़ियां न मिलेंगी। इतनी देर हो गयी, कोई भोजन लेकर नहीं आया, मालूम होता है, सब लोग भोजन कर चुके। मेरे लिये कुछ न बचा। यह सोचकर उन्हें रोना आया; परन्तु अशकुनके भयसे वह रो न सकीं।

"आहा! कैसी सुगंधि है! अब मुझे कौन पूछता है? जब रोटियोंहीके लाले पड़े हैं तब ऐसे भाग्य कहां कि भर-पेट पूड़ियां मिलें?"—यह विचार कर उन्हें रोना आया, कलेजेमें एक हूक सी उठने लगी। परन्तु रूपाके भयसे उन्होंने फिर भी मौन धारण कर लिया।

बूढ़ी काकी देरतक इन्हीं दुःखदायक विचारोंमें डूबी रहीं। घी और मसालोंकी सुगंधि रह-रहकर मनको आपेसे बाहर किये देती थी। मुंहमें पानी भर-भर आता था। पूड़ियोंका स्वाद स्मरण करके हृदयमें गुदगुदी होने लगती थी। किसे पुकारूं; आज लाडली बेटी भी नहीं आयी।

दोनों छोकड़े सदा दिक किया करते हैं। आज उनका भी कहीं पता नहीं। कुछ मालूम तो होता कि क्या बन रहा है।

बूढ़ी काकीकी कल्पनामें पूड़ियोंकी तस्वीर नाचने लगी। खूब लाल-लाल फूली-फूली, नरम-नरम होंगी। रूपाने भली-भांति मोयन दिया होगा। कचौरियोंमें अजवाइन और इलाइचीकी महक आ रही होगी। एक पूरी मिलती तो जरा हाथमें लेकर देखती। क्यों न चलकर कड़ाहके सामने हो बैठूं। पूड़ियां छन-छनकर तैरती होंगी। कड़ाहसे गरम-गरम निकालकर थालमें रखी जाती होंगी। फूल हम घरमें भी संघ सकते हैं; परन्तु वाटिकामें कुछ और बात होती है। इस प्रकार निर्णय करके बूढ़ी काकी उकड़ू बैठकर हाथोंके बल सरकती हुई बड़ी कठिनाईसे चौखटसे उतरीं और धीरे-धीरे रेंगती हुई कड़ाहके पास जा बैठीं। यहां आनेपर उन्हें उतना ही धैर्य्य हुआ जितना भूखे कुत्तेको खानेवालेके सम्मुख बैठनेमें होता है।

रूपा उस समय कार्यभारसे उद्विग्न हो रही थी। कभी इस कोठेमें जाती, कभी उस कोठेमें, कभी कड़ाहके पास आती, कभी भंडारमें जाती। किसीने बाहरसे आकर

कहा,—महाराज ठंडई मांग रहे हैं। ठंडई देने लगी। इतनेमें फिर किसीने आकर कहा—भाट आया है, उसे कुछ दे दो। भाटके लिये सोधा निकाल रही थी कि एक तीसरे आदमीने आकर पूछा—"अभी भोजन तैयार होनेमें कितना विलम्ब है? जरा ढोल मजीरा उतार दो।" बेचारी अकेली स्त्री दौड़ते-दौड़ते व्याकुल हो रही थी, झुंझलाती थी, कुढ़ती थी, परन्तु क्रोध प्रकट करनेका अवसर न पाती थी। भय होता; कहीं पड़ोसिनें यह न कहने लगें कि इतनेमें ही उबल पड़ीं। प्याससे स्वयं उसका कंठ सूख रहा था। गर्मीके मारे फूंकी जाती थी, परन्तु इतना अवकाश भी नहीं था कि जरा पानी पी ले अथवा पंखा लेकर झले। यह भी खटका था कि जरा आंख हटी और चीजोंकी लूट मची। इस अवस्थामें उसने बूढ़ी काकीको कड़ाहके पास बैठा देखा तो जल गयी। क्रोध न रुक सका। इसका भी ध्यान न रहा कि पड़ोसिनें बैठी हुई हैं मनमें क्या कहेंगी, पुरुषोंमें लोग सुनेंगे तो क्या कहेंगे। जिस प्रकार मेढ़क केचुयेपर झपटता है, उसी प्रकार वह बूढ़ी काकीपर झपटी और उन्हें दोनों हाथोंसे झिंझोड़कर बोली—ऐसे पेटमें आग लगे, पेट है या भाड़? कोठरीमें

बैठते हुए क्या दम घुटता था ? अभी मेहमानोंने नहीं खाया, भगवानको भोग नहीं लगा, तबतक धैर्य न हो सका ? आकर छातीपर सवार हो गयीं । जल जाय ऐसी जीभ । दिनभर खाती न होतीं तो न जाने किसकी हांड़ीमें मुंह डालतीं ? गांव देखेगा तो कहेगा कि बुढ़िया भरपेट खानेको नहीं पाती, तब तो इस तरह मुंह बाये फिरती है । डाइन न मरे न मांचा छोड़े । नाम बेचनेपर लगी है । नाक कटवाकर दम लेगी । इतना ठूंसती है, न जाने कहां भस्म हो जाता है । लो ! भला चाहती हो तो जाकर कोठरीमें बैठो, जब घरके लोग खाने लगेंगे तब तुम्हें भी मिलेगा । तुम कोई देवी नहीं हो कि चाहे किसीके मुंहमें पानी न जाय परन्तु तुम्हारी पूजा पहले हो जाय । बूढ़ी काकीने सिर न उठाया, न रोईं, न बोलीं । चुपचाप रेंगती हुई अपनी कोठरीमें चली गयीं । आघात ऐसा कठोर था कि हृदय और मस्तिष्ककी सम्पूर्ण शक्तियां, सम्पूर्ण विचार और सम्पूर्ण भार उसी ओर आकर्षित हो गये थे । नदीमें जब करारका कोई वृहद् खण्ड कटकर गिरता है तो आसपासका जलसमूह चारों ओरसे उसी स्थानको पूरा करनेके लिये दौड़ता है ।

बूढ़ी काकी

भोजन तैयार हो गया। आंगनमें पत्तल पड़ गये। मेहमान खाने लगे। स्त्रियोंने जेवनार-गीत गाना आरम्भ कर दिया। मेहमानोंके नाई और सेवकगण भी उसी मंडलीके साथ, किन्तु कुछ हटकर, भोजन करने बैठे थे, परन्तु सभ्यतानुसार जबतक सब-के-सब खा न चुके कोई उठ नहीं सकता था। दो-एक मेहमान जो कुछ पढ़े-लिखे थे सेवकोंके दीर्घाहारपर झुंझला रहे थे। वे इस बन्धनको व्यर्थ और बे-सिर-पैरकी बात समझते थे।

बूढ़ी काकी अपनी कोठरीमें जाकर पश्चात्ताप कर रही थीं कि मैं कहां-से-कहां गयी। उन्हें रूपापर क्रोध नहीं था। अपनी जल्दबाजीपर दुःख था। सच ही तो है जबतक मेहमान लोग भोजन न कर चुकेंगे घरवाले कैसे खायेंगे। मुझसे इतनी देर भी नहीं रहा गया। सबके सामने पानी उतर गया। अब जबतक कोई बुलाने न आयेगा न जाऊंगी।

मन-ही-मन इसी प्रकार विचार कर वह बुलावेकी प्रतीक्षा करने लगीं। परन्तु घीका रुचिकर सुवास बड़ा ही धैर्य्य-परीक्षक प्रतीत हो रहा था। उन्हें एक-एक पल एक-एक युगके समान मालूम होता था। अब पत्तल बिछ गये

होंगे। अब मेहमान आ गये होंगे। लोग हाथ-पैर धो रहे हैं, नाई पानी दे रहा है। मालूम होता है लोग खाने बैठ गये। जेवनार गाया जा रहा है, यह विचार कर वह मनको बहलानेके लिये लेट गयीं। धीरे-धीरे एक गीत गुनगुनाने लगीं। उन्हें मालूम हुआ कि मुझे गाते देर हो गयी। क्या इतनी देरतक लोग भोजन कर ही रहे होंगे। किसीकी आवाज नहीं सुनायी देती। अवश्य ही लोग खा-पीकर चले गये। मुझे कोई बुलाने नहीं आया। रूपा चिढ़ गयी है क्या जाने न बुलाये, सोचती हो कि आप ही आवेंगी, वह कोई मेहमान तो हैं नहीं, जो उन्हें बुलाऊं। बूढ़ी काकी चलनेके लिये तैयार हुईं। यह विश्वास कि एक मिनटमें पूड़ियां और मसालेदार तरकारियां सामने आयेंगी उनकी स्वादेन्द्रियोंको गुदगुदाने लगा। उन्होंने मनमें तरह-तरहके मंसूबे बांधे—पहले तरकारीसे पूड़ियां खाऊंगी, फिर दही और शक्करसे; कचौरियां रायतेके साथ मजेदार मालूम होंगी। चाहे कोई बुरा माने चाहे भला, मैं तो मांग मांगकर खाऊंगी। यही न लोग कहेंगे कि इन्हें विचार नहीं? कहा करें, इतने दिनोंके बाद पूड़ियां मिल रही हैं तो मुंह जूठा करके थोड़े ही उठ जाऊंगी।

बूढ़ी काकी

वह उकड़ू बैठकर हाथोंके बल खसकती आंगनमें आयीं। परन्तु हाय दुर्भाग्य! अभिलाषाने अपने पुराने स्वभावके अनुसार समयकी मिथ्या कल्पना की थी। मेहमान-मंडली अभी बैठी हुई थी। कोई खाकर उंगलियां चाटता था, कोई तिर्छे नेत्रोंसे देखता था कि और लोग अभी खा रहे हैं या नहीं? कोई इस चिन्तामें था कि पत्तलपर पूड़िया छटी जाती हैं किसी तरह इन्हें भीतर रख लेता। कोई दही खाकर जीभ चटकारता था, परन्तु दूसरा दोना मांगते संकोच करता था कि इतनेमें बूढ़ी काकी रेंगती हुई उनके बीचमें जा पहुंचीं। कई आदमी चौंककर उठ खड़े हुए। पुकारने लगे—अरे यह कौन बुढ़िया है? यह कहांसे आ गयी? देखो किसीको छू न दे।

पं० बुद्धिराम काकीको देखते ही क्रोधसे तिलमिला गये। पूड़ियोंका थाल लिये खड़े थे। थालको जमीनपर पटक दिया और जिस प्रकार निर्दयो महाजन अपने किसी बेईमान और भगोड़े असामीको देखते ही झपटकर उसका टेटुआ पकड़ लेता है उसी तरह झपटकर उन्होंने बूढ़ी काकीके दोनों हाथ पकड़े और घसीटते हुए लाकर उन्हें

अंधेरी कोठरीमें धमसे पटक दिया। आशारूपी वाटिका लूके एक ही झोंकेसे निष्ट-विनष्ट हो गयी।

मेहमानोंने भोजन किया। घर वालोंने भोजन किया। बाजेवाले, धोबी, चमार भी भोजन कर चुके, परन्तु बूढ़ी काकीको किसीने न पूछा। बुद्धिराम और रूपा दोनों ही बूढ़ी काकीको उसकी निर्लज्जताके लिये दण्ड देनेका निश्चय कर चुके थे। उनके बुढ़ापेपर, दीनतापर, हत-ज्ञानपर किसीको करुणा न आती थी। अकेली लाडली उनके लिये कुढ़ रही थी।

लाडलीको काकीसे अत्यन्त प्रेम था। बेचारी भोली लड़की थी। बालविनोद और चंचलताकी उसमें गंधतक न थी। दोनों बार जब उसके माता-पिताने काकीको निर्दयतासे घसीटा तो लाडलीका हृदय ऐंठकर रह गया। वह झुंझला रही थी कि यह लोग काकीको क्यों बहुत-सी पूड़ियां नहीं दे देते? क्या मेहमान सब-की-सब खा जायेंगे? और यदि काकीने मेहमानोंके पहले खा लिया तो क्या बिगड़ जायेगा? वह काकीके पास जाकर उन्हें धैर्य देना चाहती थी; परन्तु माताके भयसे न जाती थी। उसने अपने हिस्सेकी पूड़ियां बिलकुल न खायी थीं। अपनी

गुड़ियोंकी पिटारीमें बन्द कर रखी थीं। वह उन पूड़ियोंको काकीके पास ले जाना चाहती थी। उसका हृदय अधीर हो रहा था। बूढ़ी काकी मेरी बात सुनते ही उठ बैठेंगी। पूड़ियां देखकर कैसी प्रसन्न होंगी! मुझे खूब प्यार करेंगीं!

रातके ग्यारह बज गये थे। रूपा आंगनमें पड़ी सो रही थी। लाडलीकी आँखोंमें नींद न आती थी। काकीको पूड़ियां खिलानेकी खुशी उसे सोने न देती थी। उसने गुड़ियोंकी पिटारी सामने ही रखी थी। जब विश्वास हो गया कि अम्मा सो रही है, तो वह चुपकेसे उठी और विचारने लगी, कैसे चलूं। चारों ओर अंधेरा था। केवल चूल्होंमें आग चमक रही थी; और चूल्होंके पास एक कुत्ता लेटा हुआ था। लाडलीकी दृष्टि द्वारके सामनेवाली नीमकी ओर गयी। उसे मालूम हुआ कि उसपर हनुमानजी बैठे हुए हैं। उनकी पूंछ, उनकी गदा, सब स्पष्ट दिखलायी दे रही थी। मारे भयके उसने आँखें बन्द कर लीं, इतनेमें कुत्ता उठ बैठा; लाडलीको ढाढ़स हुआ। कई सोये हुए मनुष्योंके बदले एक जागता हुआ कुत्ता उसके लिये अधिक-तर धैर्यका कारण हुआ। उसने पिटारी उठायी और बूढ़ी काकीकी कोठरीकी ओर चली।

नवजीवन

बूढ़ी काकीको केवल इतना स्मरण था कि किसीने मेरे हाथ पकड़कर घसीटे, फिर ऐसा मालूम हुआ जैसे कोई पहाड़पर उड़ाये लिये जाता है। उनके पैर बार-बार पत्थरोंसे टकराये तब किसीने उन्हें पहाड़परसे पटका, वे मूर्च्छित हो गयीं।

जब वे सचेत हुईं तो किसीकी जरा भी आहट न मिलती थी। समझा कि सब लोग खा-पीकर सो गये और उनके साथ मेरी तकदीर भी सो गयी। रात कैसे कटेगी? राम! क्या खाऊं, पेटमें अग्नि धधक रही है? हा! किसीने मेरी सुध न ली! क्या मेरा ही पेट काटनेसे धन जुट जायगा? इन लोगोंको इतनी भी दया नहीं आती कि न जाने बूढ़िया कब मर जाय? उसका जी क्यों दुखावें? मैं पेटकी रोटियां ही खाती हूं कि और कुछ? इसपर यह हाल! मैं अंधी अपाहिज ठहरी, न कुछ सुनूं न बूझूं, यदि आंगनमें चली गयी तो क्या बुद्धिरामसे इतना कहते न बनता था कि काकी अभी लोग खा रहे हैं, फिर आना। मुझे घसीटा, पटका। उन्हीं पूड़ियोंके लिये रूपाने सबके सामने गालियां दीं। उन्हीं पूड़ियोंके लिये इतनी दुर्गति करनेपर भी उनका पत्थरका कलेजा न पसीजा। सबको

खिलाया, मेरी बाततक न पूछी। जब तब ही न दीं तब अब क्या देंगी ?

यह विचार कर काकी निराशामय संतोषके साथ लेट गयीं। ग्लानिसे गला भर-भर आता था, परन्तु मेहमानोंके भयसे रोती न थीं।

सहसा उनके कानोंमें आवाज आयी—"काकी उठो, मैं पूड़ियां लायी हूं।"

काकीने लाडलीकी बोली पहचानी। चटपट उठ बैठीं। दोनों हाथोंसे लाडलीको टटोला और उसे गोदमें बैठा लिया।

लाडलीने पूड़ियां निकालकर दीं। काकीने पूछा—"क्या तुम्हारी अम्माने दी है ?" लाडलीने कहा—"नहीं यह मेरे हिस्सेकी हैं। काकी पूड़ियोंपर टूट पड़ीं। पांच मिनटमें पिटारी खाली हो गयी। लाडलीने पूछा—काकी, पेट भर गया ? जैसे थोड़ीसी वर्षा ठंडकके स्थानपर और भी गर्मी पैदा कर देती है उसी भांति इन थोड़ीसी पूड़ियोंने काकीकी क्षुधा और इच्छाको उत्तेजित कर दिया था। बोलीं—"नहीं बेटी, जाकर अम्मासे और मांग लाओ।" लाडलीने कहा—"अम्मा सोती है, जगाऊंगी तो मारेगी।"

नवजीवन

काकीने पिटारीको फिर टटोला। उसमें कुछ खुर्चन गिरे थे। उन्हें निकालकर वे खा गयीं। बार-बार होंठ चाटती थीं। चटखारें भरती थीं।

हृदय मसोस रहा था कि और पूड़ियाँ कैसे पाऊं। सन्तोषसेतु जब टूट जाता है तब इच्छाका बहाव अपरिमित हो जाता है। मतवालोंको मद्का स्मरण करना उन्हें मदान्ध बनाता है। काकीका अधीर मन इच्छाके प्रबल प्रवाहमें बह गया। उचित और अनुचितका विचार जाता रहा। वे कुछ देरतक उस इच्छाको रोकती रहीं। सहसा लाडलीसे बोलीं—"मेरा हाथ पकड़कर वहां ले चलो जहां मेहमानोंने बैठकर भोजन किया है।"

लाडली उनका अभिप्राय समझ न सकी। उसने काकीका हाथ पकड़ा और ले जाकर जूठे पत्तलोंके पास बिठला दिया। दीन, क्षुधातुर, हत-ज्ञान बुढ़िया पत्तलोंसे पूड़ियोंके टुकड़े चुन-चुनकर भक्षण करने लगी। ओह! दही कितना स्वादिष्ट था, कचौरियां कितनी सलोनी, खस्ता कितनी सुकोमल। काकी बुद्धिहीन होते हुए भी इतना जानती थी कि मैं वह काम कर रही हूं जो मुझे कदापि न करना चाहिये। मैं दूसरोंके जूठे पत्तल चाट

रही हूं। परन्तु बुढ़ापा तृष्णा-रोगका अन्तिम समय है, जब सम्पूर्ण इच्छायें एक ही केन्द्रपर आ लगती हैं। बूढ़ी काकीमें यह केन्द्र उनकी स्वादेन्द्रिय थी।

ठीक उसी समय रूपाकी आँखें खुलीं। उसे मालूम हुआ कि लाडली मेरे पास नहीं है। वह चौंकी, चारपाईके इधर-उधर ताकने लगी कि कहीं नीचे तो नहीं गिर पड़ी। उसे वहां न पाकर वह उठ बैठी तो क्या देखती है कि लाडली जूठे पत्तलोंके पास चुपचाप खड़ी है और बूढ़ी काकी पत्तलोंपरसे पूड़ियोंके टुकड़े उठा-उठाकर खा रही हैं। रूपाका हृदय सन्न हो गया। किसी गायकी गर्दनपर छुरी चलते देखकर जो अवस्था उसको होती, वही उस समय हुई। एक ब्राह्मणी दूसरोंका जूठा पत्तल टटोले; इससे अधिक शोकमय दृश्य असम्भव था। पूड़ियोंके कुछ ग्रासोंके लिये उसकी चचेरी सास ऐसा पतित और निकृष्ट कर्म कर रही है! यह वह दृश्य था जिसे देखकर देखनेवालोंके हृदय काँप उठते हैं। ऐसा प्रतीत होता मानों जमीन रुक गयी, आसमान चक्कर खा रहा है। संसारपर कोई नई विपत्ति आनेवाली है। रूपाको क्रोध न आया। शोकके सम्मुख क्रोध कहां? करुणा और भयसे उसकी

आंखें भर आयीं। इस अधर्मके पापका भागी कौन है? उसने सच्चे हृदयसे गगन-मण्डलकी ओर हाथ उठाकर कहा—"परमात्मा, मेरे बच्चोंपर दया करो, इस अधर्मका दण्ड मुझे मत दो, नहीं तो हमारा सत्यानाश हो जायगा।

रूपाको अपनी स्वार्थपरता और अन्याय इस प्रकार प्रत्यक्षरूपमें कभी न देख पड़ा था। वह सोचने लगी,—हाय! कितनी निदय हूं। जिसकी सम्पत्तिसे मुझे दो सौ रुपया वार्षिक आय हो रही है, उसकी यह दुर्गति! और मेरे कारण। हे दयामय भगवन्! मुझसे बड़ी भारी चूक हुई है, मुझे क्षमा करो। आज मेरे बेटेका तिलक था। सैकड़ों मनुष्योंने भोजन पाया। मैं उनके इशारोंकी दासी बनी रही। अपने नामके लिये सैकड़ों रुपये व्यय कर दिये; परन्तु जिसकी बदौलत हजारों रुपये खाये उसे इस उत्सव-में भी भरपेट भोजन न दे सकी। केवल इसी कारण तो, वह वृद्धा है, असहाय है!

रूपाने दिया जलाया, अपने भण्डारका द्वार खोला और एक थालीमें सम्पूर्ण सामग्रियां सजाकर लिये हुए बूढ़ी काकीकी ओर चली।

आधी रात जा चुकी थी, आकाशपर तारोंके थाल सजे

हुए थे और उनपर बैठे हुए देवगण स्वर्गीय पदार्थ सजा रहे थे, परन्तु उनमें किसीको वह परमानन्द प्राप्त न हो सकता था जो बूढ़ी काकीको अपने सम्मुख थाल देखकर प्राप्त हुआ। रूपाने कंठावरुद्ध स्वरमें कहा—"काकी उठो, भोजन कर लो। मुझसे आज बड़ी भूल हुई, उसको बुरा न मानना। परमात्मासे प्रार्थना कर दो कि वह मेरा अपराध क्षमा कर दें।"

भोले-भाले बच्चोंकी भाँति, जो मिठाइयां पाकर मार और तिरस्कार सब भूल जाते हैं, बूढ़ी काकी वैसे ही सब भुलाकर बैठी हुई खाना खा रही थीं। उनके एक-एक रोयेंसे सच्ची सदिच्छायें निकल रही थीं और रूपा बैठी इस स्वर्गीय दृश्यका आनन्द लूटनेमें निमग्न थी।

जुगनूकी चमक

पंजाबके सिंह राजा रणजीतसिंह संसारसे चल चुके थे और राज्यसे वे प्रतिष्ठित पुरुष जिनके द्वारा उसका उत्तम प्रबन्ध चल रहा था, परस्परके द्वेष और अनबनके कारण मर मिटे थे। राजा रणजीतसिंहका बनाया हुआ सुन्दर किन्तु खोखला भवन अब नष्ट हो चुका था। कुँवर दिलीपसिंह अब इँग्लैण्डमें थे और रानी चंद्रकुँवरि चुनारके दुर्गमें। रानी चंद्रकुँवरिने विनष्ट होते हुए राज्यको बहुत संभालना चाहा, किन्तु वह राज्य-शासनप्रणाली न जानती थी और कूटनीति ईर्षाकी आग भड़कानेके सिवा और क्या करती?

रातके बारह बज चुके थे। रानी चन्द्रकुँवरि अपने निवासभवनके ऊपर छतपर खड़ी गंगाकी ओर देख रही थी और सोचती थी—"लहरें क्यों इस प्रकार स्वतंत्र हैं? उन्होंने कितने गाँव और नगर डुबाये हैं, कितने जीवजन्तु

तथा द्रव्य निगल गई हैं; किन्तु फिर भी वे स्वतन्त्र हैं। कोई उन्हें बन्द नहीं करता। इसीलिए न कि वे बन्द नहीं रह सकतीं? वे गरजेंगी बल खायेंगी—और बाँधके ऊपर चढ़कर उसे नष्ट कर देंगीं। अपने जोरसे उसे बहा ले जायेंगी।"

यह सोचते-विचारते रानी गादीपर लेट गई। उसकी आँखोंके सामने पूर्वावस्थाकी स्मृतियां मनोहर स्वप्नकी भाँति आने लगीं। कभी उसकी भौंहकी मरोड़ तलवारसे भी अधिक तीव्र थी और उसकी मुसकराहट वसंतकी सुगंधित समीरसे भी अधिक प्राणपोषक; किन्तु हाय अब इनकी शक्ति हीनावस्थाको पहुंच गई। रोवे तो अपनेको सुनानेके लिये, हँसे तो अपनेको बहलानेके लिए। यदि बिगड़े तो किसीका क्या बिगाड़ सकती है और प्रसन्न हो तो किसीका क्या बना सकती है? रानी और बाँदीमें कितना अन्तर है? रानीकी आँखोंसे आँसूकी बूँदें झरने लगीं, जो कभी विषसे अधिक प्राणनाशक और अमृतसे अधिक अनमोल थीं। वह इसी भाँति अकेली, निराश, कितनी बार रोई थी, जब कि आकाशके तारोंके सिवा और कोई देखनेवाला न था।

(२)

इसी प्रकार रोते-रोते रानीकी आँख लग गई। उसका प्यारा, कलेजेका टुकड़ा कुँवर दिलीपसिंह, जिसमें उसके प्राण बसते थे, उदासमुख आकर सामने खड़ा हो गया। जैसे गाय दिनभर जंगलोंमें रहनेके पश्चात् संध्याको घर आती है और अपने बछड़ेको देखते ही प्रेम और उमंगसे मतवाली होकर, स्तनोंमें दूध भरे, पूँछ उठाये, दौड़ती है, उसी भाँति चन्द्रकुँवरि अपने दोनों हाथ फैलाये अपने प्यारे कुँवरको छातीसे लपटानेके लिए दौड़ी। परन्तु आँख खुल गई और जीवनकी आशाओंकी भाँति वह स्वप्न भी विनष्ट हो गया। रानीने गंगाकी ओर देखा, और कहा—मुझे भी अपने साथ लेती चलो। इसके बाद रानी तुरंत छतसे उतरी। कमरेमें एक लालटेन जल रही थी। उसके उजेलेमें उसने एक मैली साड़ी पहनी, गहने उतार दिये। रत्नोंके एक छोटेसे बक्सको और एक तीव्र कटारको कमरमें रक्खा। जिस समय वह बाहर निकली, नैराश्यपूर्ण साहसकी मूर्ति थी।

सन्तरीने पुकारा। रानीने उत्तर दिया—मैं हूं झंगी।

"कहाँ जाती है?"

जुगनूकी चमक

"गँगाजल लाऊँगी। सुराही टूट गई है। रानीजी पानी माँग रही हैं।

सन्तरी कुछ समीप आकर बोला—चल, मैं भी तेरे साथ चलता हूं। जरा रुक जा।

झंगी बोली—मेरे साथ मत आओ। रानी कोठेपर हैं। देख लेंगी।

सन्तरीको धोखा देकर चन्द्रकुँवरि गुप्तद्वारसे होती हुई अँधेरेमें काँटोंसे उलझती, चट्टानोंसे टकराती, गंगाके किनारे जा पहुंची।

रात आधीसे अधिक जा चुकी थी। गंगाजीमें संतोष-प्रदायिनी शांति विराज रही थी। तरङ्गें तारोंको गोदमें लिये सो रही थीं। चारों ओर सन्नाटा था।

रानी नदीके किनारे-किनारे चली जाती थी और मुड़-मुड़कर पीछे देखती थी। एकाएक एक डोंगी खूँटेसे बँधी हुई देख पड़ी। रानीने उसे ध्यानसे देखा तो मल्लाह सोया हुआ था। उसे जगाना, कालको जगाना था। वह तुरन्त रस्सी खोलकर नावपर सवार हो गई। नाव धीरे-धीरे धारके सहारे चलने लगी, शोक और अन्धकार-मय स्वप्नकी भांति, जो ध्यानकी तरंगोंके साथ बहा चला जाता हो।

नावके हिलनेसे मल्लाह चौंककर उठ बैठा। आंखें मलते-मलते उसने देखा तो पटरेपर एक स्त्री हाथमें डाँड़ लिये बैठी है। घबराकर पूछा—"तैं कौन है रे? नाव कहां लिये जात है?" रानी हँस पड़ी। भयके अन्तको साहस कहते हैं। बोली—सच बताऊँ या झूठ?

मल्लाह कुछ भयभीत-सा होकर बोला—सच बताया जाय।

रानी बोली—अच्छा तो सुन। मैं लाहौरकी रानी चंद्र-कुँवरि हूं। इसी किलेमें कैद थी। आज भागी जाती हूं। मुझे जल्दी बनारस पहुंचा दे। तुझे निहाल कर दूँगी और यदि शरारत करेगा तो देख, इस कटारसे सिर काट दूँगी। सवेरा होनेसे पहले मुझे बनारस पहुंचना चाहिए।

यह धमकी काम कर गई। मल्लाहने विनीत भावसे अपना कम्बल बिछा दिया और तेजीसे डाँड़ चलाने लगा। किनारेके वृक्ष और ऊपर जगमगाते हुए तारे साथ-साथ दौड़ने लगे।

(३)

प्रातःकाल चुनारके दुर्गमें प्रत्येक मनुष्य अचम्भित और व्याकुल था। सन्तरी, चौकीदार और लौंड़ियाँ सब

सिर नीचे किये दुर्गके स्वामीके सामने उपस्थित थे। अन्वेषण हो रहा था; परन्तु कुछ पता न चलता था।

उधर रानी बनारस पहुंची। परन्तु वहां पहलेसे ही पुलिस और सेनाका जाल बिछा हुआ था। नगरमें नाके बन्द थे। रानीका पता लगानेवालेके लिए एक बहुमूल्य पारितोषिककी सूचना दी गई थी।

बन्दीगृहसे निकलकर रानीको ज्ञात हो गया कि वह और दृढ़ कारागारमें है। दुर्गमें प्रत्येक मनुष्य उसका आज्ञाकारी था। दुर्गका स्वामी भी उसे सम्मानकी दृष्टिसे देखता था। किन्तु आज स्वतंत्र होकर भी उसके ओठ बन्द थे। उसे सभी स्थानोंमें शत्रु देख पड़ते थे। पंखरहित पक्षीको पिञ्जरेके कोनेमें ही सुख है।

पुलिसके अफसर प्रत्येक आने-जानेवालेको ध्यानसे देखते थे, किन्तु उस भिखारिनीकी ओर किसीका ध्यान नहीं जाता था, जो एक फटी हुई साड़ी पहने यात्रियोंके पीछे-पीछे धीरे धीरे सिर झुकाये गंगाकी ओरसे चली आ रही है। न वह चौंकती है, न हिचकती है, न घबराती है। इस भिखारिनीकी नसोंमें रानीका रक्त है।

यहाँसे भिखारिनीने अयोध्याकी राह ली। वह दिनभर

विकट मार्गोंमें चलती, और रातको किसी सूनसान स्थान-पर लेट रहती थी। मुख पीला पड़ गया था। पैरोंमें छाले थे। फूल-सा बदन कुम्हला गया था।

वह प्रायः गाँवोंमें लाहौरकी रानीके चरचे सुनती। कभी-कभी पुलिसके आदमी भी उसे रानीकी टोहमें दत्त-चित्त देख पड़ते। उन्हें देखते ही भिखारिनीके हृदयमें सोई हुई रानी जाग उठती। वह आंखें उठाकर उन्हें घृणाकी दृष्टिसे देखती और शोक तथा क्रोधसे उसकी आँखें जलने लगतीं। एक दिन अयोध्याके समीप पहुंचकर रानी एक वृक्षके नीचे बैठी हुई थी। उसने कमरसे कटार निकालकर सामने रख दी थी। वह सोच रही थी कि कहां जाऊँ? मेरी यात्राका अन्त कहाँ है? क्या इस संसारमें अब मेरे लिये कहीं ठिकाना नहीं है? वहांसे थोड़ी दूरपर आमोंका एक बहुत बड़ा बाग था। उसमें बड़े-बड़े डेरे और तम्बू गड़े हुए थे। कई एक सन्तरी चमकीली वर्दियाँ पहने टहल रहे थे, कई घोड़े बँधे हुए थे। रानीने इस राजसी ठाट-बाटको शोककी दृष्टिसे देखा। एक बार वह भी काश्मीर गई थी। उसका पड़ाव इससे कहीं बढ़कर था।

बैठे-बैठे सन्ध्या हो गई। रानीने वहीं रात काटना

निश्चय किया। इतनेमें एक बूढ़ा मनुष्य टहलता हुआ आया और उसके समीप खड़ा हो गया। ऐंठी हुई दाढ़ी थी, शरीरमें सटा हुआ चपकन था, कमरमें तलवार लटक रही थी। इस मनुष्यको देखते ही रानीने तुरंत कटार उठा-कर कमरमें खोंस ली। सिपाहीने उसे तीव्र दृष्टिसे देखकर पूछा—बेटी, कहाँसे आती हो?

रानीने कहा—बहुत दूरसे।

"कहाँ जाओगी?"

"यह नहीं कह सकती, बहुत दूर।"

सिपाहीने रानीकी ओर फिर ध्यानसे देखा और कहा—जरा अपनी कटार मुझे दिखाओ। रानी कटार सँभालकर खड़ी हो गई और तीव्र स्वरसे बोली—मित्र हो या शत्रु? ठाकुरने कहा—मित्र। सिपाहीके बातचीत करने-के ढँग और चेहरेमें कुछ ऐसी विलक्षणता थी जिससे रानीको विवश होकर विश्वास करना पड़ा।

वह बोली—विश्वासघात न करना। यह देखो।

ठाकुरने कटार हाथमें ली। उसको उलटपलटकर देखा और बड़े नम्र भावसे उसे आँखोंसे लगाया। तब रानीके आगे विनीत भावसे सिर झुकाकर वह बोला—

महारानी चन्द्रकुँवरि ? रानीने करुण स्वरसे कहा—नहीं, अनाथ भिखारिनी। तुम कौन हो ?

सिपाहीने उत्तर दिया—आपका एक सेवक।

रानीने उसकी ओर निराश दृष्टिसे देखा और कहा, दुर्भाग्यके सिवा इस संसारमें मेरा कोई नहीं।

सिपाहीने कहा—महारानीजी, ऐसा न कहिये। पंजाबके सिंहकी महारानीके वचनपर अब भी सैकड़ों सिर झुक सकते हैं। देशमें ऐसे लोग वर्त्तमान हैं जिन्होंने आपका नमक खाया और उसे भूले नहीं हैं।

रानी—अब इसकी इच्छा नहीं। केवल एक शान्त-स्थान चाहती हूं, जहांपर एक कुटीके सिवा और कुछ न हो।

सिपाही—ऐसा स्थान पहाड़ोंमें ही मिल सकता है। हिमालयकी गोदमें चलिए, वहीं आप उपद्रवसे बच सकती हैं।

रानी (आश्चर्यसे)—शत्रुओंमें जाऊँ ? नैपाल कब हमारा मित्र रहा है ?

सिपाही—राणा जंगबहादुर दृढ़प्रतिज्ञ राजपूत हैं।

रानी—किन्तु वही जंगबहादुर तो है जो अभी अभी

हमारे विरुद्ध लार्ड डलहौजीको सहायता देनेपर उद्यत था।

सिपाही (कुछ लज्जित-सा होकर)—तब आप महारानी चन्द्रकुँवरि थीं, आज आप भिखारिनी हैं। ऐश्वर्य्यके द्वेषी और शत्रु चारों ओर होते हैं। लोग जलती हुई आगको पानीसे बुझाते हैं, पर राख माथेपर चढ़ाई जाती है। आप जरा भी सोच-विचार न करें। नैपालमें अभी धर्मका लोप नहीं हुआ है। आप भय त्याग करें और चलें, देखिये वह आपको किस भाँति सिर और आँखोंपर बिठाता है।

रानीने रात इसी वृक्षकी छायामें काटी। सिपाही भी वहीं सोया। प्रातःकाल वहाँपर दो तीव्रगामी घोड़े देख पड़े। एकपर सिपाही सवार था और दूसरेपर एक अत्यन्त रूपवान् युवक। यह रानी चन्द्रकुँवरि थी, जो अपनी रक्षा-स्थानकी खोजमें नैपाल जाती थी। कुछ देर पीछे रानीने पूछा—यह पड़ाव किसका है? सिपाहीने कहा—राणा जंगबहादुरका। वे तीर्थयात्रा करने आये हैं; किन्तु हमसे पहले पहुंच जायँगे।

रानी—तुमने उनसे मुझे यहीं क्यों न मिला दिया? उनका हार्दिक भाव प्रकट हो जाता।

सिपाही—यहाँ उनसे मिलना असम्भव था। आप जासूसोंकी दृष्टिसे बच न सकतीं।

(४)

उस समयमें यात्रा करना प्राणको अर्पण कर देना था। दोनों यात्रियोंको अनेकों बार डाकुओंका सामना करना पड़ा। उस समय रानीकी वीरता, उसका युद्ध-कौशल तथा फुर्ती देखकर बूढ़ा सिपाही दाँतों तले अँगुली दबाता था। कभी उनकी तलवार काम कर जाती और कभी घोड़ेकी तेज चाल।

यात्रा बड़ी लम्बी थी। जेठका महीना मार्गमें ही समाप्त हो गया। वर्षा ऋतु आई। आकाशमें मेघ-माला छाने लगी। सूखी नदियाँ उतरा चलीं। पहाड़ी नाले गरजने लगे। न नदियोंमें नाव, न नालोंपर घाट किन्तु घोड़े सधे हुए थे। स्वयं पानीमें उतर जाते और डूबते उतराते, बहते, भँवर खाते पार जा पहुंचते। एक बार बिच्छूने कछुये-की पीठपर नदीकी यात्रा की थी। यह यात्रा उससे कम भयदायक न थी।

कहीं ऊँचे ऊँचे साखू और महुएके जंगल थे और कहीं हरे-भरे जामुनके वन। उनकी गोदमें हाथियों और-

हिरनोंके झुंड कलोलें कर रहे थे। धानकी क्यारियाँ पानी-से भरी हुई थीं। किसानोंकी स्त्रियाँ धान रोपती थीं और सुहावने गीत गाती थीं। कहीं उन मनोहारी ध्वनियोंके बीचमें, खेतकी मेंड़ोंपर छातेकी छायामें बैठे हुए जमींदारों-के कठोर शब्द सुनाई देते थे।

इसी प्रकार यात्राके कष्ट सहते, अनेकानेक विचित्र दृश्य देखते, दोनों यात्री तराई पार करके नैपालकी भूमिमें प्रविष्ट हुए।

(५)

प्रातःकालका सुहावना समय था। नैपालके महाराजा सुरेन्द्रविक्रमसिंहका दरबार सजा हुआ था। राज्यके प्रति-ष्ठित मंत्री अपने अपने स्थानपर बैठे हुए थे। नैपालने एक बड़ी लड़ाईके पश्चात् तिब्बतपर विजय पाई थी। इस समय सन्धिकी शर्तोंपर विवाद छिड़ा था। कोई युद्धव्ययका इच्छुक था, कोई राज्यविस्तारका। कोई कोई महाशय वार्षिक करपर ज़ोर दे रहे थे। केवल राणा जंगबहादुरके आनेकी देर थी। वे कई महीनोंके देशाटनके पश्चात् आज ही रातको लौटे थे और यह प्रसंग, जो उन्हींके आगमनकी प्रतीक्षा कर रहा था, अब मंत्रि-सभामें उपस्थित किया

गया था। तिब्बतके यात्री, आशा और भयकी दशामें, प्रधान मंत्रीके मुखसे अन्तिम निर्णय सुननेको उत्सुक हो रहे थे। नियत समयपर चोबदारने राणाके आगमनकी सूचना दी। दरबारके लोग उन्हें सम्मान देनेके लिए खड़े हो गये। महाराजको प्रणाम करनेके पश्चात् वे अपने सुस-ज्जित आसनपर बैठ गये। महाराजने कहा—राणाजी, आप सन्धिके लिए कौन कौन प्रस्ताव करना चाहते थे?

राणाने नम्रभावसे कहा—मेरी अल्पबुद्धिमें तो इस समय कठोरताका व्यवहार करना अनुचित है। शोकाकुल शत्रुके साथ दयालुताका आचरण करना सर्वदा हमारा उद्देश्य रहा है। क्या इस अवसरपर स्वार्थके मोहमें हम अपने बहुमूल्य उद्देश्यको भूल जायँगे? हम ऐसी सन्धि चाहते हैं जो हमारे हृदयोंको एक कर दे। यदि तिब्बतका दरबार हमें व्यापारिक सुविधायें प्रदान करनेको कटिबद्ध हो, तो हम सन्धि करनेके लिये सर्वथा उद्यत हैं।

मंत्रि-मण्डलमें विवाद आरम्भ हुआ। सबकी सम्मति इस दयालुताके अनुसार न थी किन्तु महाराजने राणाका समर्थन किया। यद्यपि अधिकांश सदस्योंको शत्रुके साथ ऐसी नरमी पसन्द न थी, तथापि महाराजके विपक्षमें बोलनेका किसीको साहस न हुआ।

जुगनूकी चमक

यात्रियोंके चले जानेके पश्चात् राणा जंगबहादुरने खड़े होकर कहा—सभाके उपस्थित सज्जनो, आज नैपालके इतिहासमें एक नई घटना होनेवाली है, जिसे मैं आपकी जातीय नीतिमत्ताकी परीक्षा समझता हूं। इसमें सफल होना आपके ही कर्तव्यपर निर्भर है। आज राज-सभामें आते समय मुझे यह आवेदन पत्र मिला है, जिसे मैं आप सज्जनोंकी सेवामें उपस्थित करता हूं। निवेदकने तुलसीदासकी केवल यह चौपाई लिख दी है—

"आपतकाल परखिए चारी।
धीरज धर्म मित्र अरु नारी॥"

महाराजने पूछा—यह पत्र किसने भेजा है?

"एक भिखारिनीने।"

"भिखारिनी कौन है?"

"महारानी चन्द्रकुँवरि।"

कड़बड़ खत्रीने आश्चर्यसे पूछा—जो हमारी मित्र अँगरेज सरकारसे विरुद्ध होकर भाग आई है?

राणा जंगबहादुरने लज्जित होकर कहा—जी हाँ। यद्यपि हम इसी विचारको दूसरे शब्दोंमें प्रकट कर सकते हैं।

कड़बड़ खत्री—अँगरेजोंसे हमारी मित्रता है और मित्रके शत्रुकी सहायता करना मित्रताकी नीतिके विरुद्ध है।

जनरल शमशेर बहादुर—ऐसी दशामें इस बातका भय है कि अँगरेजी सरकारसे हमारे सम्बन्ध टूट न जायँ।

राजकुमार रणवीरसिंह—हम यह मानते हैं कि अतिथि-सत्कार हमारा धर्म है; किन्तु उसी समयतक जबतक कि हमारे मित्रोंको हमारी ओरसे शंका करनेका अवसर न मिले।

इस प्रसंगपर यहाँतक मतभेद तथा वादविवाद हुआ कि एक शोर-सा मच गया और कई प्रधान यह कहते हुए सुनाई दिये कि महारानीका इस समय आना देशके लिए कदापि मङ्गलकारी नहीं हो सकता।

तब राणा जंगबहादुर उठे। उनका मुख लाल हो गया था। उनका सद्विचार क्रोधपर अधिकार जमानेके लिए व्यर्थ प्रयत्न कर रहा था। वे बोले—भाइयो, यदि इस समय मेरी बातें आप लोगोंको अत्यन्त कड़ी जान पड़ें तो मुझे क्षमा कीजियेगा, क्योंकि अब मुझमें अधिक श्रवण करनेकी शक्ति नहीं है। अपनी जातीय साहस-हीनताका यह लज्जाजनक दृश्य अब मुझसे नहीं देखा जाता। यदि

नैपालके दरबारमें इतना भी साहस नहीं कि वह अतिथि-सत्कार और सहायताकी नीतिको निभा सके, तो मैं इस घटनाके सम्बन्धमें सब प्रकारका भार अपने ऊपर लेता हूं। दरबार अपनेको इस विषयमें निर्दोष समझे और इसकी सर्वसाधारणमें घोषणा कर दे।

कड़बड़ खत्री गर्म होकर बोले—केवल यह घोषणा देशको भयसे रक्षित नहीं कर सकती।

राणा जंगबहादुरने क्रोधसे ओठ चबा लिया, किन्तु संभलकर कहा—देशका शासन-भार अपने ऊपर लेनेवालों-को ऐसी अवस्थाएँ अनिवार्य हैं। हम उन नियमोंसे, जिन्हें पालन करना हमारा कर्तव्य है, मुँह नहीं मोड़ सकते। अपनी शरणमें आये हुओंका हाथ पकड़ना - उनकी रक्षा करना राजपूतोंका धर्म है। हमारे पूर्व पुरुष सदा इस नियमपर-धर्मपर प्राण देनेको उद्यत रहते थे। अपने माने हुए धर्मको तोड़ना एक स्वतंत्र जातिके लिए लज्जास्पद है। अंगरेज हमारे मित्र हैं और अत्यन्त हर्षका विषय है कि बुद्धिशाली मित्र हैं। महारानी चन्द्रकुँवरिको अपनी दृष्टिमें रखनेसे उनका उद्देश्य केवल यह था कि उपद्रवी लोगोंके गिरोहका कोई केन्द्र शेष न रहे। यदि उनका यह उद्देश्य
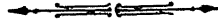
भंग न हो तो, हमारी ओरसे शङ्का होनेका न उन्हें कोई अवसर है और न हमें उनसे लज्जित होनेकी कोई आवश्यकता।

कड़वड़—महारानी चंद्रकुँवरि यहाँ किस प्रयोजनसे आई हैं ?

राणा जंगबहादुर—केवल एक शान्ति-प्रिय सुख-स्थानकी खोजमें; जहाँ उन्हें अपनी दुरवस्थाकी चिन्तासे मुक्त होनेका अवसर मिले। वह ऐश्वर्यशाली रानी जो रंग-महलोंमें सुखविलास करती थी, जिसे फूलोंके सेजपर भी चैन न मिलता था—आज सैकड़ों कोससे अनेक प्रकारके कष्ट सहन करती, नदी-नाले-पहाड़-जंगल छानती यहाँ केवल एक रक्षित स्थानकी खोजमें आई हैं। उमड़ी हुई नदियाँ और उबलते हुए नाले, बरसातके दिन। इन दुःखों-को आप लोग जानते हैं। और यह सब उसी एक रक्षित स्थानके लिए—उसी एक भूमिके टुकड़ेकी आशामें। किन्तु हम ऐसे स्थानहीन हैं कि उनकी यह अभिलाषा भी पूरी नहीं कर सकते। उचित तो यह था कि उतनी-सी भूमिके बदले हम अपना हृदय फैला देते। सोचिए कितने अभिमानकी बात है कि एक आपदामें फँसी हुई रानी अपने
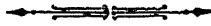
दुःखके दिनोंमें जिस देशको याद करती है वह यही पवित्र देश है। महारानी चंन्द्रकुँवरिको हमारे इस अभयप्रद स्थानपर—हमारी शरणागतोंकी रक्षापर पूरा भरोसा था और वही विश्वास उन्हें यहांतक लाया है। इसी आशापर कि पशुपतिनाथकी शरणमें मुझको शान्ति मिलेगी, वह यहांतक आई हैं। आपको अधिकार है चाहे उनकी आशा पूर्ण करें या उसे धूलमें मिला दें। चाहे रक्षणता—शरणागतोंके साथ सदाचरण—के नियमोंको निभाकर इतिहासके पृष्ठोंपर अपना नाम छोड़ जायँ, या जातीयता तथा सदाचार सम्बन्धी नियमोंको मिटाकर स्वयं अपनेको पतित समझें। मुझे विश्वास नहीं है कि यहां एक मनुष्य भी ऐसा निरभिमान है कि जो इस अवसरपर शरणागत-पालन धर्मको विस्मृत करके अपना सिर ऊँचा कर सके। अब मैं आपके अन्तिम निपटारेकी प्रतीक्षा करता हूं। कहिए, आप अपनी जाति और देशका नाम उज्ज्वल करेंगे या सर्वदाके लिए अपने माथेपर अपयशका टीका लगायंगे?

राजकुमारने उमंगसे कहा—हम महारानीके चरणोंतले आँखें बिछायँगे।

कप्तान विक्रमसिंह बोले—हम राजपूत हैं और अपने धर्मका निर्वाह करेंगे।

जनरल बनवीरसिंह—हम उनको ऐसी धूमधामसे लायँगे कि संसार चकित हो जायगा।

राजा जंगबहादुरने कहा—मैं अपने मित्र कड़बड़ खत्रीके मुखसे उनका फैसला सुनना चाहता हूं।

कड़बड़ खत्री एक प्रभावशाली पुरुष थे, और मंत्रि-मण्डलमें वे राजा जंगबहादुरकी विरुद्ध मण्डलीके प्रधान थे। वे लज्जाभरे शब्दोंमें बोले—यद्यपि मैं महारानीके आगमनको भयरहित नहीं समझता, किन्तु इस अवसरपर हमारा धर्म यही है कि हम महारानीजीको आश्रय दें। धर्मसे मुँह मोड़ना किसी जातिके लिये मानका कारण नहीं हो सकता।

कई ध्वनियोंने उमंगभरे शब्दोंमें इस प्रसंगका समर्थन किया।

महाराज सुरेन्द्रविक्रमसिंहने इस वादविवादको ध्यानसे सुना और कहा—धर्मवीरो, मैं तुम्हें इस निपटारेपर बधाई देता हूं। तुमने जातिका नाम रख लिया। पशुपति इस उत्तम कार्य्यमें तुम्हारी सहायता करें।

सभा विसर्जित हुई। दुर्गसे तोपें छूटने लगीं। नगर-भरमें खबर गूंज उठी कि पंजाबकी महारानी चंद्रकुँवरि-

का शुभागमन हुआ है। जनरल रणवीरसिंह और जनरल समरधीरसिंह बहादुर ५००० सेनाके साथ महारानीकी अगवानीके लिये चले।

अतिथि-भवनकी सजावट होने लगी। बाजार अनेक भाँतिकी उत्तम सामग्रियोंसे सज गये।

ऐश्वर्य्यकी प्रतिष्ठा व सम्मान सब कहीं होता है, किन्तु किसीने भिखारिनीका ऐसा सम्मान देखा है? सेनायें बैंड बजातीं और पताका फहराती हुईं एक उमड़ी नदीकी भाँति चली जाती थीं। सारे नगरमें आनन्द ही आनन्द था। दोनों ओर सुन्दर वस्त्राभूषणोंसे सजे दर्शकोंका समूह खड़ा था। सेनाके कमांडर आगे आगे घोड़ोंपर सवार थे। सबके आगे राणा जंगबहादुर, जातीय अभिमानके मदमें लीन, अपने सुवर्ण-खचित हौदेमें बैठे हुए थे। यह उदारताका एक पवित्र दृश्य था। धर्मशालाके द्वारपर यह जुलूस रुका। राणा हाथीसे उतरे। महारानी चन्द्रकुँवरि कोठरीसे बाहर निकल आईं। राणाने झुककर वंदना की। रानी उनकी ओर आश्चर्यसे देखने लगीं। यह वही उनका मित्र उनका बूढ़ा सिपाही था।

आँखें भर आईं। मुसकराईं। खिले हुए फूलपरसे

ओसकी बूंद टपकीं। रानी बोली—मेरे बूढ़े ठाकुर, मेरी नाव पार लगानेवाले, किस भाँति तुम्हारा गुण गाऊँ ?

राणाने सिर झुकाकर कहा—आपके चरणारविन्दसे हमारे भाग्य उदय हो गये।

(६)

नैपालकी राजसभाने पच्चीस हजार रुपयेसे महारानीके लिये एक उत्तम भवन बनवा दिया और उनके लिये दस हजार रुपया मासिक नियत कर दिया।

वह भवन आजतक वर्तमान है और नैपालकी शरणागतप्रियता तथा प्रणपालन-तत्परताका स्मारक है। पंजाबकी रानीको लोग आजतक याद करते हैं।

यह सीढ़ी है जिससे जातियाँ, यशके सुनहले शिखरपर पहुंचती हैं।

ये ही घटनायें हैं जिनसे जातीय इतिहास प्रकाश और महत्त्वको प्राप्त होता है।

पोलिटिकल रेजीडेण्टने गवर्नमेंटको रिपोर्ट की। इस बातकी शंका थी कि गवर्नमेंट आव् इण्डिया और नैपालके बीच कुछ खिंचाव हो जाय, किन्तु गवर्नमेंटको राणा जंगबहादुरपर पूर्ण विश्वास था और जब नैपालकी राज-

सभाने विश्वास और सन्तोष दिलाया कि महारानी चन्द्र-कुवरिको किसी शत्रुभावके प्रयत्नका अवसर न दिया जायगा, तो भारत सरकारको भी सन्तोष हो गया। इस घटनाको भारतीय इतिहासकी अँधेरी रातमें 'जुगनूकी चमक' कहना चाहिये।

दुर्गाका मन्दिर

(१)

बाबू ब्रजनाथ कानून पढ़नेमें मग्न थे और उनके दोनों बच्चे लड़ाई करनेमें। श्यामा चिल्लाती थी कि मुन्नू मेरी गुड़िया नहीं देता। मुन्नू रोता था कि श्यामाने मेरी मिठाई खा ली।

ब्रजनाथने क्रुद्ध होकर भामासे कहा, तुम इन दुष्टोंको यहांसे हटाती हो कि नहीं, नहीं तो मैं एक-एककी खबर लेता हूं।

भामा चूल्हेमें आग जला रही थी, बोली, अरे तो अब क्या सन्ध्याको भी पढ़ते ही रहोगे? जरा दम तो ले लो।

ब्रजनाथ—उठा तो न जायगा; बैठी-बैठी वहींसे कानून बघार रही हो। अभी एक-आधको पटक दूंगा तो वहांसे गरजती हुई आओगी कि हाय! हाय! बच्चेको मार डाला।

भामा—तो मैं कुछ बैठी या सोई तो नहीं हूं, जरा एक

घड़ी तुम्हीं लड़कोंको बहला दोगे तो क्या होगा। कुछ मैंने ही तो उनकी नौकरी नहीं लिखायी!

बाबू ब्रजनाथसे कोई जवाब न देते बन पड़ा। क्रोध, पानीके समान बहावका मार्ग न पाकर और भी प्रबल हो जाता है। यद्यपि ब्रजनाथ नैतिक सिद्धान्तोंके ज्ञाता थे, पर उनके पालनमें इस समय कुशल न दिखायी दी। मुद्दई और मुद्दालेह दोनोंको एक ही लाठी हांका और दोनोंको रोते-चिल्लाते छोड़ कानूनका ग्रन्थ बगलमें दबा, कालेज-पार्ककी राह ली।

(२)

सावनका महीना था। आज कई दिनके बाद बादल खुले थे, हरे-भरे वृक्ष सुनहरी चादरें ओढ़े खड़े थे। मृदु समीर सावनके राग गाती थी और बगुले डालियोंपर बैठे हिंडोले झूल रहे थे। ब्रजनाथ एक बेंचपर जा बैठे और किताब खोली, लेकिन इस ग्रन्थकी अपेक्षा प्रकृति-ग्रन्थका अवलोकन अधिक चित्ताकर्षक था। कभी आसमानको पढ़ते थे, कभी पत्तियोंको, कभी छविमयी हरियालीको और कभी सामने मैदानमें खेलते हुए लड़कोंको।

यकायक उन्हें सामने घासपर कागजकी एक पुड़िया

दिखाई दी। मायाने जिज्ञासाकी आड़में कहा, देख इसमें क्या है?

बुद्धिने कहा, तुमसे मतलब? पड़ी रहने दो।

लेकिन जिज्ञासा-रूपी मायाकी जीत हुई। ब्रजनाथने उठकर पुड़िया उठा ली। कदाचित् किसीके पैसे पुड़ियामें लिपटे गिर पड़े हैं। खोलकर देखा, वे सावरेन थे! गिना पूरे आठ निकले। कुतूहलकी सीमा न रही।

ब्रजनाथकी छाती धड़कने लगी। आठो सावरेन हाथमें लिये वे सोचने लगे, इन्हें क्या करूं? अगर यहीं रख दूं तो न जाने किसकी नजर पड़े, न मालूम कौन उठा ले जाय! नहीं, यहां रखना उचित नहीं, चलूं थानेमें इसकी इत्तला कर दूं और ये सावरेन थानेदारको सौंप दूं। जिसके होंगे वह आप ले जायगा या अगर उसे न भी मिले तो मुझपर कोई दोष न रहेगा; मैं तो अपने उत्तरदायित्वसे मुक्त हो जाऊंगा।

मायाने परदेकी आड़से मन्त्र मारना प्रारम्भ किया। वे थाने न गये; सोचा, चलूं, भामासे एक दिल्लगी करूं। भोजन तैयार होगा। कल इतमिनानसे थाने जाऊंगा।

भामाने सावरेन देखे, हृदयमें एक गुदगुदी-सी हुई।
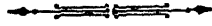
पूछा—किसकी हैं ?

मेरी।

चलो, कहीं हो न।

पड़ी मिली है।

झूठी बात। ऐसे ही भाग्यके बली हो तो सच बताओ कहां मिलीं ? किसकी हैं ?

सच कहता हूं पड़ी मिली हैं।

मेरी कसम ?

तुम्हारी कसम।

भामा गिन्नियोंको पतिके हाथसे छीननेकी चेष्टा करने लगी।

ब्रजनाथने कहा, क्यों छीनती हो ?

भामा—लाओ मैं अपने पास रख लूं।

रहने दीजिये, मैं इनकी इत्तला करने थाने जाता हूं।

भामाका मुख मलीन हो गया। बोली, पड़े हुए धनकी क्या इत्तला ?

ब्रजनाथ—हां और क्या, इन आठ गिन्नियोंके लिए ईमान बिगाड़ूं न ?

भामा—अच्छा तो सवेरे चले जाना। इस समय जाओगे तो आनेमें देरी होगी।

ब्रजनाथने भी सोचा, वही अच्छा है। थानेवाले रातको तो कोई कार्रवाई करेंगे नहीं। अब अशर्फियोंको पड़ा ही रहना है तब जैसे थाना वैसा मेरा घर।

गिन्नियां सन्दूकमें रख दीं। खा-पीकर लेटे तो भामाने हँसकर कहा, आया धन क्यों छोड़ते हो, लाओ मैं अपने लिए एक गुलबन्द बनवा लूं, बहुत दिनोंसे जी तरस रहा है।

मायाने इस समय हास्यका रूप धारण किया था।

ब्रजनाथने तिरस्कार करके कहा, गुलूबन्दकी लालसामें गलेमें फाँसी लगाना चाहती हो क्या?

(३)

प्रातःकाल ब्रजनाथ थाने चलनेके लिये प्रस्तुत हुए। कानूनका एक लेक्चर छूट जायगा, कोई हरज नहीं। वे इलाहाबादकी हाईकोर्टमें अनुवादक थे। नौकरीमें उन्नतिकी आशा न देखकर सालभरसे वकालतकी तैयारीमें मग्न थे। लेकिन अभी कपड़े पहिन ही रहे थे कि उनके एक मित्र, मुंशी गोरेलाल आकर बैठ गये और अपनी पारिवारिक दुश्चिन्ताओंकी विस्तृत राम-कहानी सुनाकर अत्यन्त विनयभावसे बोले,—भाई साहेब, इस समय मैं इन झंझटोंमें

ऐसा फँस गया हूं कि बुद्धि कुछ काम नहीं करती। तुम बड़े आदमी हो। इस समय कुछ सहायता करो। जियादह नहीं, तीस रुपये दे दो। किसी-न-किसी तरह काम चला लूंगा। आज ता० ३० है। कल शामको तुम्हें रुपये मिल जायंगे।

ब्रजनाथ बड़े आदमी तो न थे, किन्तु बड़प्पनकी हवा बांध रखी थी। यह मिथ्याभिमान उनके स्वभावकी एक दुर्बलता थी। केवल अपने वैभवका प्रभाव डालनेके लिये ही वे बहुधा मित्रोंको छोटी-मोटी आवश्यकताओंपर अपनी वास्तविक आवश्यकताओंको अर्पण कर दिया करते थे। लेकिन भामाको इस विषयमें उनसे सहानुभूति न थी। यह दिखावके लिए इस आत्म-त्यागको व्यर्थ समझती थी। इसलिये जब ब्रजनाथपर इस प्रकारका संकट आ पड़ता था, तब थोड़ी देरके लिए उनकी पारिवारिक शान्ति अवश्य भङ्ग हो जाती थी। उनमें इन्कार करने या टालने-की हिम्मत न थी।

वे कुछ सकुचाते हुए भामाके पास गये और बोले, तुम्हारे पास तीस रुपये तो न होंगे? मुंशी गोरेलाल मांग रहे हैं।

भामाने रुखाईसे कहा, मेरे पास रुपये नहीं हैं।

ब्रजनाथ—होंगे तो जरूर, बहाना करती हो।

भामा—अच्छा, बहाना सही।

ब्रजनाथ—तो मैं उनसे क्या कह दूं?

भामा—कह दो, घरमें रुपये नहीं हैं, तुमसे न कहते बने तो मैं पर्देकी आड़से कह दूं।

ब्रजनाथ—कहनेको तो मैं कह दूं लेकिन उन्हें विश्वास न आवेगा, समझेंगे बहाना कर रहे हैं।

भामा—समझेंगे समझा करें।

ब्रजनाथ—मुझसे तो ऐसी बेमुरौवती नहीं हो सकती। रात-दिनका साथ ठहरा कैसे इन्कार करूं?

भामा—अच्छा, तो जो मनमें आवे सो करो। मैं एक बार कह चुकी हूं कि मेरे पास रुपये नहीं हैं।

ब्रजनाथ मनमें बहुत खिन्न हुए। उन्हें विश्वास था कि भामाके पास रुपये हैं, लेकिन केवल मुझे लज्जित करनेके लिए इन्कार कर रही है। दुराग्रहने सङ्कल्पको दृढ़ कर दिया। सन्दूकसे दो गिन्नियां निकालीं और गोरेलालको देकर बोले, भाई कल शामको कचहरीसे आते ही रुपये दे जाना। ये एक आदमीकी अमानत है। मैं इसी समय देने

जा रहा था—यदि कल रुपये न पहुंचे तो मुझे बहुत लज्जित होना पड़ेगा ; कहीं मुंह दिखाने योग्य न रहूंगा।

गोरेलालने मनमें कहा, अमानत स्त्रीके सिवा और किसकी होगी और गिन्नियां जेबमें रखकर घरकी राह ली।

(४)

आज पहली तारीखकी संध्या है। ब्रजनाथ दरवाजेपर बैठे हुए गोरेलालका इन्तजार कर रहे हैं।

पांच बज गये, गोरेलाल अभीतक नहीं आये। ब्रजनाथकी आंखें रास्तेकी तरफ लगी हुई थीं। हाथमें एक पत्र था। लेकिन पढ़नेमें जी न लगता था। हर तीसरे मिनट रास्तेकी ओर देखने लगते थे। लेकिन आज वेतन मिलनेका दिन है। इसी कारण आनेमें देर हो रही है ; आते ही होंगे। छः बजे ; गोरेलालका पता नहीं। कचहरीके कर्मचारी एक-एक करके चले आ रहे थे। ब्रजनाथको कई बार धोखा हुआ। वे आ रहे हैं। जरूर वे ही हैं। वैसी ही अचकन है। वैसी ही टोपी। चाल भी वही है। हां, वहीं हैं। इसी तरफ आ रहे हैं। अपने हृदयसे एक बोझासा उतरता मालूम हुआ। लेकिन निकट आनेपर ज्ञात हुआ कि

कोई और है। आशाकी कल्पित मूर्त्ति दुराशामें विलीन हो गयी।

व्रजनाथका चित्त खिन्न होने लगा। वे एक बार कुरसीपरसे उठे। बरामदेकी चौखटपर खड़े होकर सड़ककी दोनों तरफ निगाह दौड़ायी। कहीं पता नहीं।

दो-तीन बार दूरसे आते हुए इक्कोंको देखकर गोरेलालका भ्रम हुआ। आकांक्षाकी प्रबलता!

सात बजे। चिराग जल गये। सड़कपर अन्धेरा छाने लगा। व्रजनाथ सड़कपर उद्विग्न भावसे टहलने लगे। इरादा हुआ गोरेलालके घर चलूं। उधर कदम बढ़ाये। लेकिन हृदय काँप रहा था कि कहीं वे रास्तेमें जाते हुए न मिल जायं तो समझें कि थोड़ेसे रुपयेके लिए इतने व्याकुल हो गये। थोड़ी ही दूर गये कि किसीको आते देखा। भ्रम हुआ गोरेलाल हैं। मुड़े और सीधे बरामदेमें आकर दम लिया। लेकिन फिर वही धोखा! फिर वही भ्रान्ति। तब सोचने लगे कि इतनी देर क्यों हो रही है। क्या अभीतक वे कचहरीसे न आये होंगे? ऐसा कदापि नहीं हो सकता। उनके दफ्तरवाले मुद्दत हुई निकल गये। बस, दो बातें हो सकती हैं। या तो उन्होंने कल आनेका निश्चय कर लिया,

समझे होंगे कि रातको कौन जाय या जान-बूझकर बैठ रहे होंगे; देना न चाहते होंगे। उस समय उनकी गरज थी इस समय मेरी गरज है। मैं ही किसीको क्यों न भेज दू, लेकिन किसे भेजूं! मन्नू जा सकता है। सड़क ही पर मकान है। यह सोचकर कमरेमें गये। लैम्प जलाया और पत्र लिखने बैठे, मगर आंखें द्वारहीकी ओर लगी हुई थीं। अकस्मात् किसीके पैरकी आहट सुनाई दी। तुरन्त पत्रको एक किताबके नीचे दबा लिया और बरामदेमें चले आये। देखा तो पड़ोसका एक कुंजड़ा है, तार पढ़ाने आया है। उससे बोले—भाई, इस समय फुरसत नहीं है, थोड़ी देरमें आना। उसने कहा, बाबूजी, घरभरके प्राणी घबराये हैं, जरा एक निगांह देख लीजिये। निदान ब्रजनाथने झुंझला-कर उसके हाथसे तार ले लिया और सरसरी दृष्टिसे देख-कर बोले, कलकत्तेसे आया है, माल नहीं पहुंचा। कुंजड़ेने डरते-डरते कहा, बाबूजी, इतना और देख लीजिये कि किसने भेजा है। इसपर ब्रजनाथने तारको फेंक दिया और बोले, मुझे इस वक्त फुरसत नहीं है।

आठ बज गये। ब्रजनाथको निराशा होने लगी। मन्नू इतनी रात बीते नहीं जा सकता। मनने निश्चय किया, मुझे

आपही जाना चाहिये; बलासे बुरा मानेंगे। इसकी कहां-तक चिन्ता करूं। स्पष्ट कह दूंगा मेरे रुपये दे दो। भलमनसी भलेमानसोंसे निभायी जा सकती है। ऐसे धूर्तोंके साथ भलमनसीका व्यवहार करना मूर्खता है। अचकन पहनी। घरमें जाकर भामासे कहा, जरा एक कामसे बाहर जाता हूं, किवाड़ बन्द कर लो।

चलनेको तो चले, लेकिन पग पगपर रुकते जाते थे। गोरेलालका घर दूरसे दिखायी दिया; लैम्प जल रहा था। ठिठक गये और सोचने लगे, चलकर क्या कहूंगा? कहीं उन्होंने जाते-जाते रुपये निकालकर दे दिये और देरीके लिये क्षमा मांगी, तो मुझे बड़ी झेंप होगी। वे मुझे क्षुद्र, ओछा, धैर्यहीन समझेंगे। नहीं, रुपयेकी बातचीत करूं ही क्यों? कहूंगा, भाई घरमें बड़ी देरसे पेट दर्द कर रहा है। तुम्हारे पास पुराना तेज सिरका तो नहीं है, मगर नहीं, यह बहाना कुछ भद्दा-सा प्रतीत होता है। साफ कलई खुल जायगी। उंह! इस झंझटकी जरूरत ही क्या है। वे मुझे देखकर खुद ही समझ जायंगे। इस विषयमें बातचीतकी कुछ नौबत ही न आवेगी। ब्रजनाथ इसी उधेड़-बुनमें आगे बढ़ते चले जाते थे जैसे नदीकी लहरें चाहे किसी ओर चलें, धारा अपना मार्ग नहीं छोड़ती।

दुर्गाका मन्दिर

गोरेलालका घर आ गया। द्वार बन्द था। ब्रजनाथको उन्हें पुकारनेका साहस न हुआ। समझे, खाना खा रहे होंगे। दरवाजेके सामनेसे निकले और धीरे-धीरे टहलते हुए एक मीलतक चले गये। ९ बजनेको आवाज कानमें आयी। गोरेलाल भोजन कर चुके होंगे, यह सोचकर लौट पड़े। लेकिन द्वारपर पहुंचे तो अन्धेरा था। वह आशा-रूपी दीपक बुझ गया था। एक मिनटतक दुविधामें खड़े रहे। क्या पुकारू ? हां, अभी बहुत सवेरा है। इतने ज़ल्द थोड़े ही सो गये होंगे। दबे पांव बरामदेपर चढ़े। द्वारपर कान लगाकर सुना, चारों ओर ताक रहे थे कि कहीं कोई देख न ले। कुछ बातचीतकी भनक कानमें पड़ी। ध्यानसे सुना। स्त्री कह रही थी, रुपये तो सब उठ गये, ब्रजनाथ-को कहांसे दोगे ? गोरेलालने उत्तर दिया, ऐसी कौनसी उतावली है; फिर दे देंगे। आज दरखास्त दे दी है। कल मंजूर हो जायगी, तीन महीनेके बाद लौटेंगे तो देखा जायगा।

ब्रजनाथको ऐसा जान पड़ा मानो मुँहपर किसीने तमाचा मार दिया। क्रोध और नैराश्यसे भरे हुए बरामदेसे उतर आये। घर चले तो सीधे कदम न पड़ते थे, जैसे दिनभरका थका-मांदा पथिक।

(५)

ब्रजनाथ रातभर करवटें बदलते रहे। कभी गोरेलाल-की धूर्त्ततापर क्रोध आता था। कभी अपनी सरलतापर क्रोध होता था। मालूम नहीं, किस गरीबके रुपए हैं, उस-पर क्या बीती होगी! लेकिन अब क्रोध या खेदसे क्या लाभ? सोचने लगे—रुपये कहांसे आवेंगे; भामा पहिले ही इन्कार कर चुकी है; वेतनमें इतनी गुंजायश नहीं; दस पाँच रुपयेकी बात होती तो कोई कतरव्योंत तो करता। तो क्या करूं किसीसे उधार लूं? मगर मुझे कौन देगा? आजतक किसीसे मांगनेका संयोग नहीं पड़ा और अपना कोई ऐसा मित्र है भी तो नहीं! जो लोग हैं मुझी-को सताया करते हैं, मुझे क्या देंगे। हां, यदि कुछ दिन कानून छोड़कर अनुवाद करनेमें परिश्रम करूं तो रुपये मिल सकते हैं। कम-से-कम एक मासका कठिन परिश्रम है। सस्ते अनुवादकोंके मारे दर भी तो गिर गयी। हा निर्दयी! तूने बड़ा दगा किया। जाने किस जन्मका बैर चुकाया। कहींका न रखा!

दूसरे दिन ब्रजनाथको रुपयोंकी धुन सवार हुई। सवेरे कानूनके लेक्चरमें सम्मिलित होते। संध्याको कचहरीसे

तजवीजोंका पुलिन्दा घर लाते और आधी राततक बठे अनुवाद किया करते। सिर उठानेकी मुहलत न मिलती। कभी एक दो भी बज जाते। जब मस्तिष्क बिलकुल शिथिल हो जाता, तब विवश होकर चारपाईपर पड़ रहते।

लेकिन इतने परिश्रमका अभ्यास न होनेके कारण कभी-कभी सिरमें दर्द होने लगता। कभी पाचन-क्रियामें विघ्न पड़ जाता कभी ज्वर चढ़ आता। तिसपर भी वे मैशीनकी तरह काममें लगे रहते। भामा कभी-कभी झुंझलाकर कहती, अजी लेट भी रहो ; बड़े धर्मात्मा बने हो। तुम्हारे जैसे दस-पाँच आदमी और होते तो संसारका काम हो बन्द हो जाता। ब्रजनाथ इस बाधाकारी व्यंग्यका कोई उत्तर न देते। दिन निकलते ही फिर वही चरखा ले बैठते।

यहांतक कि तीन सप्ताह बीत गये और २५) हाथ आ गये। ब्रजनाथ सोचते थे, दो तीन दिनमें बेड़ा पार है। लेकिन इक्कोसवें दिन उन्हें प्रचण्ड ज्वर चढ़ आया और तीन दिनतक न उतरा। छुट्टी लेनी पड़ी। शय्या-सेवी बन गये। भादोंका महीना था। भामाने समझा कि पित्तका प्रकोप है। लेकिन जब एक सप्ताहतक डाक्टरकी ओषधि-

सेवन करनेपर भी ज्वर न उतरा तब वह घबराई। व्रजनाथ प्रायः ज्वरमें बकझक भी करने लगते। भामा सुनकर डरके मारे कमरेमेंसे भाग जाती। बच्चोंको पकड़कर दूसरे कमरेमें बन्द कर देती। अब उसे शङ्का होने लगती थी कि कहीं यह कष्ट उन्हीं रुपयोंके कारण तो नहीं भोगना पड़ रहा हैं। कौन जाने रुपयेवालेने कुछ कर धर दिया हो! जरूर यही बात है, नहीं तो ओषधिसे लाभ क्यों नहीं होता? संकट पड़नेपर हम धर्मभीरु हो जाते हैं। भामाने भी देवताओंकी शरण ली। वह जन्माष्टमी, शिवरात्रि और तीजके सिवा और कोई व्रत न रखती थी। इस बार उसने नौरात्रका कठिन व्रत पालन करना आरम्भ किया।

आठ दिन पूरे हो गये। अन्तिम दिन आया। प्रभातका समय था। भामाने व्रजनाथको दवा पिलायी और दोनों बालकोंको लेकर दुर्गाजीकी पूजा करने मन्दिरमें चली। उसका हृदय आराध्य देवीके प्रति श्रद्धासे परिपूर्ण था। मन्दिरके आंगनमें पहुंची। उपासक आसनोंपर बैठे हुए दुर्गापाठ कर रहे थे। धूप और अगरकी सुगन्धि उड़ रही थी। उसने मन्दिरमें प्रवेश किया। सामने दुर्गाकी विशाल प्रतिमा शोभायमान थी। उसके मुखारविन्दसे एक विलक्षण

दीप्ति झलक रही थी। बड़े उज्ज्वल नेत्रोंसे प्रभाकी किरणें आलोकित हो रही थीं। पवित्रताका एक समाँसा छाया हुआ था। भामा इस दीप्तिपूर्ण मूर्त्तिके सम्मुख सीधी आंखोंसे ताक न सकी। उसके अन्तःकरणमें एक निर्मल विशुद्ध, भावपूर्ण भय उदय हो गया। उसने आंख बन्द कर लीं, घुटनोंके बल बैठ गयी और कर जोड़कर करुण स्वरसे बोली, माता मुझपर दया करो।

उसे ऐसा ज्ञात हुआ मानों देवी मुस्कुराईं। उसे उन दिव्य नेत्रोंसे एक ज्योतिसी निकलकर अपने हृदयमें आती हुई मालूम हुई। उसके कानोंमें देवीके मुंहसे निकले ये शब्द सुनाई दिये, पराया धन लौटा दे, तेरा भला होगा।

भामा उठ बैठी। उसकी आंखोंमें निर्मल भक्तिका आभास झलक रहा था। मुखमण्डलसे पवित्र प्रेम बरसा पड़ता था। देवीने कदाचित् उसे अपनी प्रभाके रङ्गमें डुबा दिया था।

इतनेमें दूसरी एक स्त्री आयी। उसके उज्ज्वल केश बिखरे और मुरझाये हुए चेहरेके दोनों ओर लटक रहे थे। शरीरपर केवल एक श्वेत साड़ी थी। हाथमें चूड़ियोंके सिवा और कोई आभूषण न था। शोक और नैराश्यकी

साक्षात् मूर्त्ति मालूम होती थी। उसने भी देवीके सामने सिर झुकाया और दोनों हाथोंसे आंचल फैलाकर बोली—

देवी, जिसने मेरा धन लिया हो उसका सर्वनाश करो।

जैसे सितार मिजराबकी चोट खाकर थरथरा उठता है उसी प्रकार भामाका हृदय अनिष्टके भयसे थरथरा उठा। ये शब्द तीव्र शरके समान उसके कलेजेमें चुभ गये। उसने देवीकी ओर कातर नेत्रोंसे देखा। उनका ज्योतिर्मय स्वरूप भयङ्कर था और नेत्रोंसे भीषण ज्वाला निकल रही थी। भामाके अन्तःकरणमें सर्वत्र आकाशसे, मन्दिरके सामनेवाले वृक्षोंसे, मन्दिरके स्तम्भोंसे, सिंहासनके ऊपर जलते हुए दीपकसे, और देवीके विकराल मुंहसे ये शब्द निकल कर गूंजने लगे—

पराया धन लौटा दे नहीं तो तेरा सर्वनाश हो जायगा।

भामा खड़ी हो गयी और उस वृद्धासे बोली, क्यों माता, तुम्हारा धन किसीने ले लिया है?

वृद्धाने इस प्रकार उसकी ओर देखा, मानों डूबतेको तिनकेका सहारा मिला।

बोली, हां बेटी।

कितने दिन हुए?

कोई डेढ़ महीना।

कितने रुपये थे?

पूरे एक सौ बीस।

कैसे खोये?

क्या जाने कहीं गिर गये। मेरे स्वामी पल्टनमें नौकर थे। आज कई बरस हुए वे परलोक सिधारे। अब मुझे सरकारसे ६०) साल पेंशन मिलती है। अबके दो सालकी पेंशन एक साथ ही मिली थी। खजानेसे रुपये लेकर आ रही थी। मालूम नहीं कब और कहां गिर पड़े, आठ गिन्नियां थीं।

अगर वे तुम्हें मिल जायं तो क्या दोगी?

अधिक नहीं उनमेंसे ५०) दे दूंगी।

रुपये क्या होंगे कोई उससे अच्छी चीज दो।

बेटी और क्या दूं, जबतक जीऊंगी तुम्हारा यश गाऊंगी।

नहीं, इसकी मुझे आवश्यकता नहीं।

बेटी, इसके सिवा मेरे पास क्या है?

मुझे आशीर्वाद दो। मेरे पति बीमार हैं वे अच्छे हो जायं।

क्या उन्हींको रुपये मिले हैं ?

हां, वे उसी दिनसे तुम्हें खोज रहे हैं।

वृद्धा घुटनोंके बल बैठ गयी और आंचल फैलाकर कम्पित स्वरसे बोली—

देवी, इनका कल्याण करो।

भामाने फिर देवीकी ओर आशङ्कित दृष्टिसे देखा। उनके दिव्य रूपपर प्रेमका प्रकाश था। आंखोंमें दयाकी आनन्द-दायिनी झलक थी। उस समय भामाके अन्तःकरणमें कहीं स्वर्गलोकसे यह ध्वनि सुनायी दी—

जा तेरा कल्याण होगा।

(६)

सन्ध्याका समय है। भामा व्रजनाथके साथ इक्केपर बैठ तुलसीके घर उसकी थाती लौटाने जा रही है। व्रजनाथके बड़े परिश्रमकी कमाई तो डाक्टरकी भेंट हो चुकी है, लेकिन भामाने एक पड़ोसीके हाथ अपने कानोंके झूमक बेचकर रुपये जुटाये हैं। जिस समय झूमक बनकर आये थे, भामा बहुत प्रसन्न हुई थी। आज उन्हें बेचकर वह उससे भी अधिक प्रसन्न है।

दुर्गाका मन्दिर

जब ब्रजनाथने आठों गिन्नियां उसे दिखायी थीं, उसके हृदयमें एक गुदगुदी-सी हुई थी। लेकिन यह हर्ष मुखपर आनेका साहस न कर सका था। आज उन गिन्नियोंको हाथसे जाते समय उसका हार्दिक आनन्द आंखोंमें चमक रहा है, ओठोंपर नाच रहा है, कपोलोंको रंग रहा है और अङ्गोंपर किलोलें कर रहा है। वह इन्द्रियोंका आनंन्द था, यह आत्माका आनन्द है; वह आनन्द लज्जाके भीतर छिपा हुआ था, यह आनन्द गर्वसे बाहर निकला पड़ता है।

तुलसीका आशीर्वाद सफल हुआ। आज पूरे तीन सप्ताहके बाद ब्रजनाथ तकियेके सहारे बैठे थे। वे बार-बार भामाको प्रेम-पूर्ण नेत्रोंसे देखते थे। वह आज उन्हें देवी मालूम होती थीं। अबतक उन्होंने उसके बाह्य सौन्दर्य्यकी शोभा देखी थी। आज वह उसका आत्मिक सौन्दर्य्य देख रहे हैं।

तुलसीका घर एक गलीमें था। इक्का सड़कपर जाकर ठहर गया। ब्रजनाथ इक्केपरसे उतरे और अपनी छड़ी टेकते हुए भामाके हाथोंके सहारे तुलसीके घर पहुंचे। तुलसीने रुपये लिये और दोनों हाथ फैलाकर आशीर्वाद दिया—"दुर्गाजी तुम्हारा कल्याण करें!"

नवजीवन

तुलसीका वर्णहीन मुख यों खिल गया जैसे वर्षाके पीछे वृक्षोंकी पत्तियां खिल जाती हैं, सिमटा हुआ अंग फैल गया, गालोंकी झुरियां मिटती देख पड़ीं। ऐसा मालूम होता था, मानों उसका कायाकल्प हो गया।

वहांसे आकर व्रजनाथ अपने द्वारपर बैठे हुए थे कि गोरेलाल आकर बैठ गये। व्रजनाथने मुंह फेर लिया।

गोरेलाल बोला, भाई साहब, कैसी तबीयत है?

व्रजनाथ, बहुत अच्छी तरह हूं।

गोरेलाल, मुझे क्षमा कीजियेगा। मुझे इसका बहुत खेद है कि आपके रुपये देनेमें इतना विलम्ब हुआ। पहली तारीखहीको घरसे एक आवश्यक पत्र आ गया और मैं किसी तरह तीन महीनेकी छुट्टी लेकर घर भागा। वहांकी विपत्तिकथा कहूं तो समाप्त न हो। लेकिन आपकी बीमारी-का शोक-समाचार सुनकर आज भागा चला आ रहा हूं। ये लीजिए रुपये हाजिर हैं। इस विलम्बके लिये अत्यन्त लज्जित हूं।

व्रजनाथका क्रोध शान्त हो गया। विनयमें कितनी शक्ति है! बोले—

जी हां, बीमार तो था, लेकिन अब अच्छा हो गया हूं।

आपको मेरे कारण व्यर्थ कष्ट उठाना पड़ा। यदि इस समय आपको असुविधा हो तो रुपये फिर दे दीजियेगा।

मैं अब उऋण हो गया हूं। कोई जल्दी नहीं है।

गोरेलाल विदा हो गये तो ब्रजनाथ रुपया लिये हुए भीतर आये और भामासे बोले—

ये लो अपने रुपये, गोरेलाल दे गये।

भामाने कहा, ये मेरे रुपये नहीं हैं तुलसीके हैं,. एक बार पराया धन लेकर सीख गयी।

लेकिन तुलसीके तो पूरे रुपये दे दिये गये?

दे दिये गये तो क्या हुआ, ये उसके आशीर्वादकी न्योछावर है।

कानके झूमक कहांसे आवेंगे?

झूमक न रहेंगे न सही, सदाके लिये कान तो हो गया।